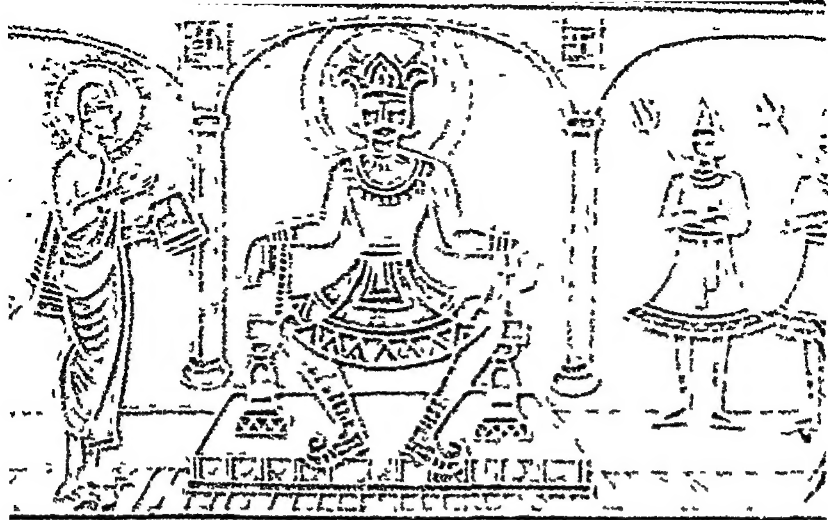
छोड़ा न जा सका। उन्हें कहीं-कहीं पर कथोपकथनों के रूप में
अथवा कहीं-कही उनके अंशों को उसी रूप में उद्धृत कर दिय
गया है। हाँ, उनका विस्तृत अनुवाद करके पुस्तक का कलेव
नही बढ़ाया गया। मुख्यकथा के तारतम्य को शृङ्खलाबद्ध रखं
का प्रयास किया गया है। आशा है, पाठक इसकी शिक्षाप्र
और मनोरंजक कथाओं से अवश्य लाभ उठायेंगे।



आमुख

भागीरथी के पवित्र तट पर पटना नाम का एक नगर है। किसी समय इस नगर मे राजा सुदर्शन राज्य करता था। उसकी राजसभा मे किसी विद्वान ने इन श्लोको को पढ़कर सुनाया—

अनेक संशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम्,
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव सः।
यौवनं, धन सम्पत्तिः, प्रभुत्वमविवेकता,
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतष्टयम !!

अर्थात्, शास्त्र मनुष्य के नेत्र है। इन नेत्रों की सहायता से वह वस्तु का यथार्थ ज्ञान ही नही, परोक्ष ज्ञान भी कर लेता है। इनके बिना आँखोंवाला आदमी भी अन्धा ही रहता है।

यौवन, धन, अधिकार और अविवेक, इनमे से प्रत्येक दुर्गुण

मनुष्य को पाप कर्म में गिरा सकता है; जिसके पास ये चारों हों वह पाप के कौन से गर्त में गिरेगा—इसका अनुमान भी कठिन है।

राजा सुदर्शन ने जब इन श्लोकों को सुना तो उसे अपने मूर्ख पुत्रों का ध्यान हो आया। ये पुत्र मूर्ख होने के साथ-साथ व्यसनी भी थे। राजा सोचने लगा—कई कुपुत्रों से तो अच्छा है कि एक ही पुत्र हो, किन्तु गुणी हो। कुपुत्रों की अधिक संख्या आकाश के अगणित तारों की तरह निरर्थक रह जाती है। एक सुपुत्र चन्द्रमा की भांति अकेला ही कुल को उज्ज्वल बना देता है। पर इन राजकुमारों में तो कोई भी सुपुत्र नहीं।

विचारों के इस भँवर में उसका सिर चकरा गया। और अन्त में उसने निश्चय किया कि जिस तरह भी हो सकेगा, वह अपने पुत्रों को नीतिज्ञ और विद्वान् बनायेगा।

राजा सुदर्शन ने अगले दिन एक सभा बुलाई। पटना के अतिरिक्त अन्य देशों के विद्वान् भी उसमें पधारे। राजा ने सब विद्वानों का अभिनन्दन करते हुए कहा :

विद्वानो, मुझे केवल अपने पुत्रों की चिन्ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये पुत्र मेरे वंश को कलंकित करेंगे। संसार में उसी पुत्र का जन्म लेना सफल होता है जो अपने वंश की मान-मर्यादा बढ़ाये। निरर्थक पुत्रों से क्या लाभ? कोई विद्वान् मेरे मूर्ख पुत्रों को भी विद्वान् बना दे तो मैं उसका उपकार मानूंगा। इस कार्य को पूरा करने के लिए मैं छः मास का समय देता हूँ।

सभा में सन्नाटा छा गया। किसी भी अन्य विद्वान् मे राजपुत्रों को इतने थोड़े समय में राजनीतिज्ञ बना देने की सामर्थ्य नहीं थी। केवल विष्णुशर्मा नाम का एक विद्वान् अपने आसन से

उठा और बोला :

राजन्, मैं वचन देता हूँ कि छः महीने के अन्दर-अन्दर मैं राजपुत्रों को राजनीतिज्ञ बना दूंगा।

राजा ने अपने पुत्रों को विष्णुशर्मा के साथ विदा किया। विष्णुशर्मा ने इन राजपुत्रों को जिन मनोरंजक कहानियो द्वारा राजनीति और व्यवहार-नीति की शिक्षा दी, उन कथाओं और नीति-वाक्यों के संग्रह को ही 'हितोपदेश' कहा जाता है।

इस कथा-संग्रह के प्रथम भाग को 'मित्रलाभ' का नाम दिया गया। पहले उस भाग की प्रथम कथा कहते है।

पहला खण्ड

मित्रलाभ

असाधना वित्तहीना बुद्धिमन्तः सुहृत्तमाः ।
साधयन्त्याशु कार्याणि काककूर्ममृगाखुवत् ।

° ° ° °

अतुल धन, साधन के विना भी बुद्धिमान लोग
मैत्री के बल पर अपना कार्य पूरा कर लेते हैं ।

° ° ° °

इस खण्ड की कथा-सूची



१

मित्रलाभ

न मातरि, न दारेषु, सोदर्ये, न चात्मजे ।
विश्वासस्तादृशः पुंसां यादृग् मित्रे स्वभावजे ।।

° ° ° °

मनुष्य को माता, पत्नी, पुत्र और भाई में भी
उतना विश्वास नही होता जितना स्वाभाविक
मित्र में होता है ।

° ° ° °

गोदावरी के तट पर सेमर का एक विशाल वृक्ष था। उस की शाखाओ पर भांति-भांति के पक्षी रहते थे । उसी वृक्ष पर लघुपतनक नाम का एक कौवा भी रहता था। एक दिन

प्रातःकाल उसे एक शिकारी दिखाई पड़ा। उस शिकारी को देखकर वह ऐसे डरा मानो उसी का काल मनुष्य-रूप में आ रहा हो। वह सोचने लगा—यह अपशकुन आज न जाने क्या अनर्थ करेगा ?

शिकारी अपने मार्ग पर बढ़ता ही गया। लघुपतनक भी शिकारी का भेद जानने के लिये गुप्त रूप से उसके पीछे-पीछे चल दिया।

उसने देखा, शिकारी कुछ दूर चलकर एक वृक्ष के नीचे ठहर गया। उसने अपनी पोटली खोली और कुछ चावलों को पृथ्वी पर बिखेर दिया। फिर जाल फैलाया और पक्षियों के फंसने की प्रतीक्षा में पास ही छिपकर बैठ गया।

थोड़ी ही देर बाद कबूतरों का सरदार चित्रग्रीव, सपरिवार उड़ता हुआ उसी मार्ग से निकला। वहाँ पृथ्वी पर बिखरे चावलों को देखकर कबूतर ठहर गये और चावल खाने को लपके। सरदार चित्रग्रीव उन कबूतरों मे सबसे अधिक चतुर था। उसने कबूतरों से कहा :

साथियो, इस निर्जन वन में चावलों के दाने देखकर मुझे विस्मय होता है। अवश्य कुछ दाल में काला है। हमें यही उचित है कि हम इनको जैसे-का-तैसा छोड़ दें और आगे बढ़ें। कही लेने-के-देने न पड़ जायें।

यह नहीं हो सकता ! 'सब कबूतर एक ही स्वर में बोल उठे :

परोसी हुई थाली से कैसे मुंह मोडा जाये ?

एक और कबूतर ने भी चित्रग्रीव का समर्थन करते हुए कहा :

भाइयो, मैं फिर कहता हूँ कि इन दानो से दूर ही रहना चाहिए। कही लोभ में फंसकर हमारा भी वही हाल न हो जो लोभ के कारण एक राहगीर का हुआ था।

राहगीर की क्या कथा है ? कबूतरों पूछा।

चित्रग्रीव ने राहगीर की कथा सुनाई…

२

लोभ बुरी बला है

लोभः पापस्य कारण

० ० ० ।

सब अनर्थों का मूल लोभ है

० ० ० ।

साथियो ! एक दिन मै दक्षिण के वनों में भ्रमण कर रह था। वहाँ मैने एक तालाव के किनारे बूढ़े व्याघ्र को वैठे देखा कहने को तो वह व्याघ्र था, पर उसने एक हाथ में कुशाएँ रखी थीं; दूसरे हाथ में सोने का कंगन। उसकी तापसी मु देखकर मुझे हँसी आ गई। पर दूसरे ही क्षण में गम्भीर गया। मै सोचने लगा—यह व्याघ्र आज अवश्य कोई-न-को नया गुल खिलायेगा।

सरोवर के पास ही एक पगडंडी थी। आने-जाने वालों व वहाँ ताँता लगा था। व्याघ्र पथिकों को सम्वोधित करके व रहा था : पथिको ! मैं आज कुछ दान करना चाहता हूँ। मे पास सोने का कंगन है। जो चाहे इसे ले सकता है।

लोग उसकी ओर देखते और उसकी लम्पटता पर हँसक आगे का रास्ता नापते। इतने में एक लोभी पथिक भी उ

और ज्यों-ज्यो निकलने की कोशिश की, दलदल मे और अधिक फंसता गया। पथिक को दलदल मे फंसा देखकर व्याघ्र उसकी ओर बढा और बोला : पथिक, स्नान क्यों नही करते ?

पथिक बोला : स्नान कैसे करूँ ? मैं तो दलदल मे फस गया हूँ। तुम्ही मुझे निकाल दो।

व्याघ्र उसके पास पहुँचकर बोला तुम इस तालाब के दलदल की कहते हो, मै तुम्हे ससार के ही दलदल से छुडाने वाला हूँ।

इतना कहकर व्याघ्र ने पथिक को सहज ही मे खा लिया।

× × × ×

कहानी सुनाने के बाद चित्रग्रीव कबूतरो से फिर बोला इसीलिए मै कहता हूँ कि तुम लोग लोभ मे फसकर अपना सर्वनाश न करो। इन चावल के दानो से मृत्यु झाँक रही है।

चित्रग्रीव के इतना समझाने पर भी कबूतरो ने हठ नही छोड़ा। सब-के-सब उन दानो पर टूट पडे। किसी ने ठीक ही कहा है कि विपत्ति पडने पर बुद्धिमान् व्यक्ति की भी बुद्धि मलिन हो जाती है। कबूतरों का उन दानो पर बैठना था कि शिकारी ने जाल समेट लिया। तब सब कबूतर जाल मे फस गये। सब-के-सब कबूतर चित्रग्रीव की सराहना करने लगे। चित्रग्रीव ने फिर सबको समझाते हुए कहा . यह समय लड़ने और झगड़ने का नही। अब तो जिस प्रकार भी हो सके, छूटने का उपाय करना चाहिए। कुछ क्षणो के लिए कबूतरों ने पख फड़फड़ाने बन्द कर दिये और उपाय सोचने लगे।

कबूतरो को जाल मे फसा देखकर शिकारी अपने स्थान से उठा और कबूतरो की ओर बढ चला। शिकारी को अपनी

ओर आते देखकर कबूतरों के प्राण सूखने लगे । तभी चित्रग्रीव बोला

साथियो, आपत्ति कभी भी घबराने से दूर नहीं होती । हमे आलस्य का त्याग करना चाहिये और 'छोटी-छोटी वस्तुओं के सगठन से भी कार्य सिद्ध हो जाते हैं' की नीति के अनुसार एक साथ जाल लेकर उड़ जाना चाहिये ।

चित्रग्रीव की वात का सव कवूतरो ने समर्थन किया और वे सव जाल समेत उड़ चले । कबूतरो को जाल समेत उड़ता देखकर शिकारी के आश्चर्य की सीमा न रही । वह भी उनके पीछे-पीछे भागा और सोचने लगा कि जव इनमें फूट पड़ेगी, तव ये स्वय पृथ्वी पर गिर पड़ेगे । पर कवूतर उड़ते ही गये । शिकारी भागते-भागते थक गया । कवूतर भी उसकी पहुँच से वाहर हो गए थे । निराश होकर शिकारी हाथ मलता हुआ वापस मुड़ गया ।

शिकारी के लौट जाने पर कबूतरों ने अपने सरदार चित्रग्रीव से पूछा : स्वामिन् ! अव क्या करना चाहिये ?

चित्रग्रीव सोचने लगा—आपत्ति मे माता, पिता और मित्र यह तीन ही स्वाभाविक सहायक होते है और शेष तो अपनी कार्यसिद्धि के लिए ही हित करते है । माता-पिता का तो अब पता नही । हाँ, मित्र कई है । तो फिर किसके पास चलना चाहिये । इसी तरह थोड़ा समय विचार करने पर उसे अपने परम मित्र हिरण्यक चूहे का ध्यान आया । वह वोला :

मित्रो, आओ हम अपने मित्र हिरण्यक के पास चलें । वह अपने तेज दाँतों से इस जाल को पल-भर मे काट डालेगा ।

सव कवूतर हिरण्यक के विल के पास जाकर उतर पड़े ।

चित्रग्रीव के बुलाने पर हिरण्यक अपने बिल से बाहर निकला। अपने मित्र को आपत्ति में देख वह बहुत दुखी हुआ और बोला

मित्र चित्रग्रीव ! यह जाल तो बहुत बड़ा है और मैं एक छोटा-सा चूहा हूँ। इसलिए सारे जाल को काटना तो मेरी शक्ति से बाहर की बात है। हाँ, मैं पहले तुम्हारे बन्धन काटता हूँ। इसके बाद तुम्हारे साथियो के बन्धन यथाशक्ति काट दूँगा।

चित्रग्रीव : मित्र, यह अन्याय है, अपने आश्रितों की चिन्ता न करके पहले अपना उद्धार कराना स्वार्थ है। तुम बारी-बारी से सबके बन्धन काटते चलो, जब मेरी बारी आ जाये तब मेरे बन्धन भी काट देना।

हिरण्यक बोला : मित्र, मैं तुम्हारी परीक्षा ले रहा था। तुम चिन्ता न करो। जब तक मेरे दाँत नही टूटते, बन्धन काटता ही रहूँगा।

हिरण्यक ने धीरे-धीरे सब कबूतरों के बन्धन काट दिये। बन्धन-मुक्त होकर सब कबूतर उड़ गये।

× × × ×

लघुपतनक हिरण्यक और चित्रग्रीव की इस मैत्री से अत्यधिक प्रभावित हुआ। वह भी हिरण्यक के बिल के पास गया और बोला :

मित्र हिरण्यक ! तुम धन्य हो ! तुम्हारे जैसे मित्र संसार में ढूंढने पर भी नही मिलते ? मै चाहता हूँ तुम मुझे भी अपना मित्र बना लो।

तुम कौन हो जो मित्र बनना चाहते हो ? हिरण्यक बिल के भीतर से ही बोला।

मै लघुपतनक नाम का कौआ हूँ।

चूहे और कौए की कैसी मित्रता ? मै तुम्हारा भक्ष्य हूँ और तुम मेरे भक्षक ! आग और पानी भी क्या कभी एक साथ रह सकते हैं ? मुझे ऐसी मित्रता नही करनी । कही मेरा भी वही हाल न हो जो हिरण और गीदड़ का हुआ था, हिरण्यक ने कहा ।

वह कैसे ? मैं भी सुनना चाहता हूँ मित्र ! मुझे भी हिरण और गीदड़ की कहानी सुनाओ, लघुपतनक ने प्रार्थना की ।

हिरण्यक ने तब यह कथा सुनाई ।

३

करनी का फल

वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम् ।

• • • •

सामने दूध-सा मधुर बोलनेवाले और पीठ पीछे विष भरी छुरी मारनेवाले मित्र को छोड़ देना चाहिए ।

• • • •

मगध देश मे चम्पारन नाम का विस्तृत वन है । किसी समय उस वन मे एक कौआ और एक हिरण रहा करते थे । दोनो घनिष्ठ मित्र थे । हिरण स्वेच्छा से वन मे निश्चिन्त भ्रमण करता था । एक दिन वह मस्त होकर घूम रहा था कि उसे एक सियार ने देख लिया । हिरण के पुष्ट अग और मासल शरीर को देखकर सियार के मुंह मे पानी भर आया । वह जानता था कि हिरण के साथ-साथ दौड़ना या उससे लड़ना सम्भव नही, अतः नीति से काम लेना चाहिये । इस लिए हिरण के पास जाकर वह बोला :

मित्र, आप सकुशल तो हैं ।

तुम कौन हो ? मै तो तुम्हे पहचानता नही, हिरण ने आश्चर्य से पूछा ।

मित्र, मै क्षुद्रबुद्धि नाम का सियार हूँ । इस विशाल मे मेरा कोई भी साथी नही । आज आपको देखकर प्रट होता है मुझे मेरा अभीष्ट मिल गया ।

यह तो मेरा सौभाग्य है, हिरण ने नम्रतापूर्वक कह मेरे लिए कोई सेवा हो तो कहें ।

सेवा ! मै तो बस यही चाहता हूँ कि आपकी मित्र का सौभाग्य प्राप्त करूँ और सदा आपके ही साथ रहूँ ।

इतना कहकर गीदड़ हिरण के साथ हो लिया । दो दिन भर हिलमिल कर खेलते रहे । सायंकाल गीदड़ भी हि के साथ-साथ उसके घर की ओर गया । दोनों अभी वृक्ष नीचे पहुँचे ही थे कि हिरण के परम मित्र कौए ने हिरण से पूछा :

मित्र, आज यह दूसरा कौन है ?

यह सियार है । हम लोगों से मित्रता करना चाहता है ।

मित्र ! जिसके कुल, निवास, शील, स्वभाव आदि क पता न हो, उसे मित्र नही बनाना चाहिए । नीति कहती

-अज्ञात कुल शीलस्य वासो देयो न कस्यचित्

जिसके कुल अथवा शील-स्वभाव का पता न हो उस किस को भी अपने साथ रहने की आज्ञा नही देनी चाहिए । अन्यथ इस प्रकार प्रत्येक पर विश्वास करनेवाला उसी भांति मार जाता है, जैसे विलाव के दोष से बेचारा गिद्ध मारा गया था ।

हिरण बोला : वह कैसे ?

कौए ने तब बिलाव और गिद्ध की कथा सुनाई ।

४

पहचान बिना मित्र न बनाओ

अज्ञात कुल शीलस्य वासो देयो न कस्यचित् ।

जिनके कुल-शील और स्वभाव का पता न हो
उन किसी को भी निवास नहीं देना चाहिए ।

गगा जी के तट पर गिद्धौर नामका पर्वत है। उस पर एक लम्बा-चौड़ा पाकड का वृक्ष था। यह वृक्ष बहुत पुराना था। इसके कोटर मे जरद्गव नाम का गिद्ध रहता था। जरद्गव इतना वृद्ध हो चुका था कि वह अपने लिए भोजन आदि का भी प्रवन्ध नही कर पाता था। उसकी दीन दशा पर दया करके उस वृक्ष पर रहनेवाले पक्षियों ने उससे कहा

तुम हमारे चले जाने के बाद हमारे बच्चो की देख-रेख किया करो, हम तुम्हें भोजन दिया करेंगे। इससे तुम्हें भोजन मिल जाया करेगा और हमारे बच्चो की देख-रेख होगी।

जरद्गव ने यह बात प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करली और दोनों का जीवन उसी भाति चलता रहा।

एक दिन पक्षियों के शावको को खाने के लिए एक बिलाव

उन पर झपटा। पक्षी बिलाव के भय से चिल्लाने लगे। जरद्गव ने उनका क्रन्दन सुना तो सचेष्ट होकर बोला :

कौन है ?

बिलाव को यह नही पता था कि उनका कोई पहरेदार भी यही बैठा है। वह हक्का-बक्का रह गया। भय से वह कापने लगा। परन्तु थोडे ही समय बाद वह सजग हो गया। उसने सोचा—तब तक भय से नही डरना चाहिए जब तक वह सामने न आजाये। जब वह सामने आजाये, तब जो कुछ बन पड़े, उसे दूर करने के लिए करे। इस समय अगर मै भागता हूँ तब भी मै पक्षियो को खा तो सकता नही। अत. कुछ सोचकर दीर्घकर्ण बिलाव जरद्गव की ओर बढ़ा और पास जाकर बोला :

महात्मन् ! प्रणाम हो।

कौन हो तुम, जो मुझे प्रणाम कर रहे हो ?

भगवन्, मै दीर्घकरण नाम का बिलाव हूँ। बिलाव का नाम सुनना था कि जरद्गव की आँखे खुल गई। वह गरज कर बोला :

तुम यहाँ क्यों आए हो ? भाग जाओ, नही तो मै तुम्हे अभी मार डालूँगा।

पहले जो मै कहता हूँ, कृपया आप उसे सुन ले। तदनन्तर आप जैसा चाहे करे। नीति कहती है कि किसी से केवल विजातीय होने के कारण वैर नही करना चाहिए। उसका व्यवहार देखने के उपरान्त वह जिस योग्य हो उसके साथ वैसा ही व्यवहार करे।

कहो, अपने आने का प्रयोजन कहो।

दीर्घकर्ण की वात सुनकर जरद्गव कुछ शान्त हुआ और वोला :

मै यही गंगाजी के पावन तट पर निवास करता हूँ। आजकल प्रात काल स्नान आदि के उपरान्त थोड़ा-सा फलाहार ग्रहण कर लेता हूँ। तत्पश्चात् पाठ-पूजा मे संलग्न हो जाता हूँ। इसी भांति मैने आजकल चान्द्रायण व्रत धारण किया हुआ है।

कुछ रुककर दीर्घकर्ण फिर वोला : मुझे इसी तरह यहां रहते काफी समय वीत गया है। जव से मै इस वन मे आया हूँ अनेक पक्षियो के मुँह से आपके ज्ञान तथा अध्ययन की प्रशसा कई वार सुन चुका हूँ। मेरी कई दिनो से आप जैसे महात्माओं के साथ ज्ञान-चर्चा करके कुछ ज्ञान प्राप्त करने की अभिलाषा थी। आज आप जैसे विद्या-वृद्ध एव वयो-वृद्ध महानुभाव के दर्शन करके मुझे असीम शान्ति प्राप्त हुई। एक वात हूँ फिर दुवारा कहूँगा कि मै तो आपकी सेवा मे कितनी श्रद्धा और विश्वास लेकर आया था। पर आप तो मेरे आते ही

वीच मे ही दीर्घकर्ण की वात काटकर जरद्गव वोला छोडो भी इस वात को।

दीर्घकर्ण हँसते हुए वोला . आप अव इसकी चिन्ता न करे। वह तो भ्रम था। आपका स्वभाव तो महान् व्यक्तियो सा है। महान् लोग वृक्ष की भांति होते है। जैसे कोई भी वृक्ष शरीर काटनेवाले लकडहारे के आने पर अपनी छाया नही समेट लेता अपितु सव को समभाव से देखता है; इसी भांति आपको तो शत्रु से भी वैर नहीं है। और फिर—

निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः।

साधु लोग तो गुणरहित अज्ञानी पर भी दया करते हैं। यदि उनके पास धन नही तो न सही, मीठी बातों से ही वह अतिथि का सत्कार करते है। फिर आपके तो कहने ही क्या हैं ?

दीर्घकर्ण की बात सुनकर जरद्गव बोला :

भाई, बात यह है कि बिलाव स्वभाव से मांस-भक्षी होता है। यहाँ तो उनके भक्ष्य पक्षी रहते ही हैं। अतएव सजग रहना पड़ता है।

जरद्गव की बात सुनते ही पृथ्वी को छूकर अपने कान पकड़ते हुए बिलाव बोला :

राम-राम, मै चान्द्रायण व्रत का अनुष्ठान कर रहा हूँ। धर्म-शास्त्रों का मैने भलीभाति अध्ययन किया है। शास्त्र के 'अहिसा परमो धर्मः' (अहिंसा सर्वश्रेष्ठ धर्म है) के सिद्धान्त को वर्षो से मानता आया हूँ। धर्म ही तो जीवन का सार है।

एक एव सुहृद् धर्मः निधनेप्यऽनुयाति यः

धर्म ही प्राणी का सबसे बड़ा बन्धु है जो कि मरने के बाद भी नही छोड़ता।

बिलाव के धर्म-वचनों को सुनकर गिद्ध को भी उस पर श्रद्धा होने लगी। उसने बिलाव को भी अपने ही साथ में रहने की आज्ञा दे दी। बिलाव कुछ दिन तो शांत रहा और फिर धीरे-धीरे वह एक-एक करके पक्षियों को खाने लगा। वृक्ष के सब पक्षी अपने बच्चों को न पाकर रोते और विलाप करते थे; पर कारण नही जान पाते। एक दिन पक्षियों ने कोटर में पड़े पखों को देखा। अब वह और सतर्क होकर खोज करने लगे। बिलाव को जब पता चला तो वह नौ-दो-ग्यारह हो गया।

पक्षियो ने कोई कारण न पाकर जरद्गव को ही दोषी समझ लिया और उसे मार डाला।

× × × ×

कौए के मुँह से इस कहानी को सुनकर गीदड़ आग-बबूला हो गया और बोला :

काकराज, जब आपकी इस हिरण के साथ मित्रता हुई थी तब आप भी तो इसके लिए नए थे। अब आपका प्रेम क्यो बढता ही जा रहा है ? अभी हिरण ने मित्रता देखी ही कहाँ है ?

आपस की कलह को शान्त करने की इच्छा से हिरण ने उन दोनों को शान्त किया। तीनो उसी वन मे आनन्दपूर्वक रहने लगे।

एक दिन एकान्त स्थान पाकर सियार हिरण से बोला : मित्र ! अब यहाँ सूखे मैदान मे कुछ भी नही रखा। यहाँ से कुछ [illegible]ी पर लहलहाता हुआ अनाज का खेत है। चलो, वहीं चलें।

अब हिरण सियार के साथ उसी खेत में जाने लगा। वे [illegible]ाँ खाते और खेत का नाश भी करते। एक दिन खेत के मालिक ने तग आकर खेत में जाल बिछा दिया। हिरण वहाँ चरने पहुँचा और जाल मे फस गया। उसे अपने ऊपर अब गुस्सा आ रहा था। वह सोच रहा था कि यदि मैं अनाज के लोभ से नित्य प्रति यहाँ न आता तो कभी न फसता। हिरण इस तरह सोच ही रहा था कि सियार उसी रास्ते से निकला। हि[illegible] को जाल मे फसा देखकर वह उसके पास गया। अपने मि[illegible] आते देखकर हिरण को धैर्य बंधा। वह सोचने लगा : अब [illegible]र [illegible]य अपने तीखे दांतों से जाल को काट डालेगा।

उसके पास आने पर हिरण उससे बोला :

मित्र मै जाल मे फंस गया हूँ। तुम्हारे दाँत तो बहुत तीखे है। कृपा करके मेरे बन्धनों को काट दो।

हिरण की बात सुनकर सियार ने जाल की ओर देखा और सोचा—यह तो वडे मजबूत जाल मे फंसा हुआ है। अब यह किसी भी तरह नही छूट सकता। वह कुछ सोचकर बोला :

मित्र, यह काम तो कोई कठिन नहीं था। पर, आज रविवार का दिन है और मेरा आज व्रत है। अगर मैं अपने दाँतों से ताँत के वने इस जाल को काटता हूँ तो व्रत खण्डित हो जायेगा। मुझे पाप भी लगेगा। हाँ, अगर तुम थोड़ा धैर्य रखो तो कल सुबह मै आऊँगा और तुम्हारे देखते-ही-देखते इस जाल के टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा।

हिरण सियार का उत्तर सुनकर हैरान रह गया। उसे गीदड से स्वप्न में भी ऐसी आशा न थी। गीदड़ हिरण के सामने से एक ओर हो गया और थोड़ी दूर पर एक झाड़ी में छिपकर बैठ गया। उसके मुँह मे बार-वार पानी भर आ रहा था। वह सोच रहा था कि कब खेत का स्वामी आए और मेरी कई दिनों की इच्छा पूरी हो।

इधर कौए ने जब हिरण को ठीक समय अपने स्थान पर नहीं पाया तो चिन्तित हो उठा। कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद वह उसे खोजने निकला। कुछ दूर उड़ने पर उसने हिरण को जाल में फंसा देखा। कौवा हिरण के पास पहुँचा और बोला :

मित्र, आज तुम्हारा परम मित्र कहाँ है ?

हिरण : कौन सियार ? उसका नाम मत लो। गया तो

मुझे खा जाना चाहता है। उसी के छल से मेरी आज यह दशा हो गई है। अब कोई बचाव का रास्ता निकालो।

दोनों विचार ही करते रहे कि सवेरा हो गया। उसी समय कौवे ने दूर ही से देखा—खेत का स्वामी हाथ में लाठी लिए चला आ रहा था। अब कौवे को एक उपाय सूझा, वह हिरण से बोला :

मित्र, तुम सांस रोककर इस तरह लेट जाओ कि खेत का स्वामी तुम्हें मरा हुआ समझे। अपना पेट फुला लो, टांगें अकड़ा लो। जैसे ही मैं बोलूं, उठकर भाग जाना। कौवे की बात हिरण को बहुत पसंद आई। उसकी बात मान वह धरती पर लेट गया।

इतने में खेत का मालिक आया। जाल से हिरण को फंसा देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। पास जाकर उसने हिरण को बिल्कुल बेजान-सा देखा।

निश्चिन्त होकर उसने जाल समेटना प्रारम्भ कर दिया। जाल समेटते हुए वह हिरण से कुछ ही दूर गया था कि कौवे ने ऊँचे स्वर में चिल्लाना शुरू कर दिया। हिरण कौवे की पुकार सुनते ही भाग खड़ा हुआ। बेजान से पड़े हिरण को भागते देख किसान ने डण्डा फेंककर मारा।

लेकिन वह डण्डा हिरण के न लग कर विश्वासघाती गीदड़ के सिर पर जा लगा। वह पापी अपने पाप से स्वयं ही मारा गया।

× × × ×

हिरण्यक फिर बोला, इसलिए मैं कहता हूँ कि भक्ष्य और भक्षक में मित्रता हो ही नहीं सकती।

लघुपतनक ने उत्तर दिया : मित्र ! मित्र को खाने से किसी का पेट सदा के लिए तो भर नही जाता। फिर तुम तो इतने छोटे हो कि मेरा एक समय का आहार भी नही वन सकते।

हिरण्यक : आप हमारे शत्रुपक्ष के है। शत्रुपक्ष का प्राणी कभी भी भलाई नही कर सकता। पानी कितना भी गरम क्यों न हो आग को बुझा ही देता है।

हिरण्यक के वारंवार इन्कार करने पर भी लघुपतनक नही माना और बोला :

मित्र, तुम जो कुछ कह रहे हो, वह सब मै पहले ही सुन चुका हूँ। वास्तव मे मै प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि या तो तुम्हारे साथ मित्रता ही करूँगा अन्यथा आत्महत्या कर लूँगा। मुझे इस वात का दुःख नही कि आप मुझ से रूखेपन से वाते कर रहे है। मै जानता हूँ कि सज्जन लोग नारियल के फल के समान होते है। ऊपर से तो वह रूखे-सूखे दिखाई देते है और अन्दर से मीठे और सरस होते है; बेर की भाँति नही कि जिसके ऊपर तो मिठास होता है, पर अन्दर गुठली होती है। इसके साथ-साथ सज्जनो मे एक गुण और भी होता है। वे लोग प्रीति के टूटने पर भी सम्वन्ध नही तोड़ते। आप में ये सव गुण है। आपके अतिरिक्त आप जैसा मित्र मुझे और कहाँ मिलेगा ? अतः हे मित्रवर ! आप बिल से वाहर निकलकर मुझ से मैत्री करो।

हिरण्यक लघुपतनक के श्रद्धायुक्त वचन सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और अपने विल से वाहर निकल आया। हिरण्यक लघुपतनक से गले मिलते हुए वोला :

मित्र, तुम्हारी दृढ़ता और मित्र-प्रेम को देखकर मैं अधिक प्रसन्न हूँ। कही दुष्ट से मित्रता न कर बैठूं, इसलिए मैंने इतने दोष गिनाए। आओ, अब हम सदा मित्र रहने की प्रतिज्ञा करें।

दोनो ने आपस मे जीवन भर मित्र रहने की प्रतिज्ञा की।

कुछ दिनो बाद की बात है। एक दिन लघुपतनक हिरण्यक से बोला ·

मित्र ! इस वन मे अब कई दिनों से खाना भी नही मिलता। सोचा है इस वन को छोडकर अब किसी दूसरे वन मे चला जाऊँ।

हिरण्यक बोला जिस प्रकार अपने स्थान से टूटे हुए दाँत, केश और नाखून अच्छे नही लगते, उसी प्रकार अपने स्थान से भ्रष्ट प्राणी भी सुख नही पाता।

लघुपतनक . यह तो तुम ठीक कहते हो। पर जिस स्थान पर भोजन ही प्राप्त न हो, उस स्थान पर रहने से क्या लाभ ? फिर भाई, मै तो पुरुषार्थ पर विश्वास करता हूँ। पुरुषार्थी के लिए अपने-पराये मे कुछ भेद नही। वह तो जहाँ जाता है अपने पुरुषार्थ से ही सफलता प्राप्त करता है। परदेश भी उसके लिए अपना ही देश हो जाता है। दण्डकारण्य मे कर्पूरगौर नामक एक सरोवर है। उसमे मन्थर नाम का एक कछुआ मेरा मित्र रहता है। वह केवल उपदेश करना ही नही जानता, स्वयं उस पर आचरण भी करता है। निश्चय ही वह वहाँ हमारा प्रेमपूर्वक स्वागत करेगा।

दोनो वहाँ चलने को सहमत हो गये और शीघ्र ही मन्थर के निवास-स्थान पर पहुँच गये।

लघुपतनक बोला : मित्र, हिरण्यक का विशेष सत्कर करो। क्योंकि इन जैसे प्राणी संसार मे मिलने दुर्लभ हैं।

सत्कार के बाद मन्थर ने उससे पूछा : मित्र, अपने नगर से चलकर इस निर्जन वन मे आने का प्रयोजन बताओ।

हिरण्यक ने तब अपने अनुभव की कथा सुनाई।

५

धन-संचय का बुरा परिणाम

दानं भोगो नाशस्त्रयोगतयो भवन्ति वित्तस्य,
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीयागतिर्भवति।

* * * *

धन की केवल तीन ही गतियाँ होती है—दान, भोग और नाश। जो दान नही देता, भोग भी नही करता, उसके धन की तीसरी गति होती है। उसका धन नष्ट हो जाता है।

* * * *

चम्पक नामक नगर में संन्यासियों का एक मठ है। किसी समय उस मठ में चूड़ाकर्ण नाम का एक संन्यासी रहता था। वह भोजन से बचे हुए अन्न को खूटी पर टाँगकर सोता। उसके सो जाने पर मैं उछल-कूदकर उस अन्न को खा लिया करता था। एक दिन उसका वीणाकर्ण नाम का एक मित्र उससे मिलने आया। वे दोनों आपस में बात-चीत करने लगे। भूख से व्याकुल होकर मैं भी उछल-उछलकर खूंटी पर टँगे भिक्षापात्र की ओर बढ़ने लगा। चूड़ाकर्ण वीणाकर्ण के साथ बात-चीत करने के साथ-साथ हाथ में फटा बाँस लेकर पृथ्वी पर मार-कर बजाता जा रहा था। यह देखकर वीणाकर्ण बोला :

मित्र, आज तुम मेरी वात ध्यान से क्यो नही सुन रहे। कारण क्या है ?

चूड़ाकर्ण : मित्र, क्या कारण वताऊँ ? इस स्थान पर एक चूहा रहता है। यह सदा मेरे भिक्षापात्र मे से भोजन चुरा लिया करता है।

वीणाकर्ण ने खूटी की ओर देखा और फिर वोला : यह छोटा-सा चूहा इतने ऊँचे स्थान पर उछलकर कैसे चढ़ जाता है, कोई-न-कोई इसका कारण अवश्य होगा । मेरे विचार मे तो इसके विल मे धन का कोष है। उसकी गर्मी से यह इतना उछलता है।

कुछ क्षण विचार करने के उपरान्त सन्यासी ने फावड़ा लेकर मेरे विल को खोद डाला और उसमे जो कुछ भोजन अथवा मेरा धन-धान्य रखा था, ले लिया। धन छिन जाने के उपरान्त मै धन की चिन्ता में इतना निर्वल हो गया कि अपने भोजन के लिये भी पहले की भाति उछल-कूद न सका। एक दिन धीरे-धीरे जा रहा था तो मुझे इस दीनदशा [illegible] कर चूड़ाकर्ण वोला :

धन से प्राणी बलवान् होता है और धन से ही लोग उसे विद्वान् कहते है। इस पापी चूहे को ही देखो, आज धन न रहने के कारण साधारण चूहे की भाँति चल-फिर रहा है।

चूड़ाकर्ण की वात सुनकर मैंने विचार किया—यह सत्य ही कहता है। प्राणी के हाथ, पाँव, कान, नाक आदि वही इन्द्रियाँ होती हैं; उसी प्रकार की वुद्धि होती है, वेचारा पुरुष भी वही होता है जो आज से पहले था, परन्तु धन के न रहने पर वही प्राणी क्षण-भर मे वदल जाता है। अव तो मेरा भी वही हाल

है। अतः अब मेरा यहाँ रहना उचित नहीं। तो क्या मैं भिक्षा माँग कर अपना निर्वाह करूँ ? यह भी असम्भव है। भिक्षा माँगकर खाने से तो भूखो ही मर जाना अच्छा है।

इसी भांति विचार करके मैंने लोभवश पुनः उसी भवन में घर बनाया। उसका फल भी पाया। मै धीरे-धीरे चल रहा था कि वीणाकर्ण ने उसी फटे हुए बाँस से मुझे पीटा। मार पड़ने पर मुझे हार्दिक खेद हुआ। उसी दिन मैंने निश्चय कर लिया कि कभी भी आशा का सहारा नही लूँगा। सदा निराश रहकर ही परिश्रम करूँगा। अतः उसी दिन से मैं इस निर्जन वन मे चला आया। कुछ समय के उपरान्त यह लघुपतनक नाम का मित्र मुझे भगवान् की कृपा से प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् लघुपतनक की कृपा से आज आपके दर्शन हो गये।

मन्थर बोला . मित्र, जो होना था वह तो हो चुका। आपने जो इतना अधिक सचय किया, यह उसी का परिणाम है। आप सचय न करते तो आपको उसके नाश का दु.ख भी न होता। अर्थ का तो उपभोग या दान ही सर्वश्रेष्ठ उपयोग है। तुम्हारी ही भाति संचय करने के कारण एक गीदड़ की मृत्यु हो गई थी।

हिरण्यक : वह क्या कथा है ?

मन्थर . सुनो !

६

थोड़ा संचय हितकर है

कर्तव्यः सञ्चयो नित्यं, कर्तव्यो नातिसञ्चयः

° ° ° °

सचय करना तो युक्त है, पर अधिक संचय
नही करना चाहिये।

• ° ° •

कल्याण नामक नगर में भैरव नाम का शिकारी रहता था। एक दिन शिकार खेलने के लिए अपने हाथों में धनुष-वाण लेकर वह वन की ओर निकल पड़ा। उसने वन में एक मृग को मारा और उसे अपने कन्धे पर रखकर चल दिया। मार्ग में उसने एक भयानक सूअर देखा। सूअर शिकारी की ओर बढ़ता चला आ रहा था। शिकारी ने उसी समय मृग को कन्धे से उतारा और तीर चलाकर सूअर को घायल कर दिया। क्रोध मे भरकर सूअर भी शिकारी पर झपटा और अपने तीखे नाखूनों से उसने शिकारी का पेट फाड़ दिया। शिकारी वहीं पर गिर पड़ा। सूअर भी तीर लगने से कुछ देर तड़पकर मर गया। दोनों के इस युद्ध में पैरों के नीचे आकर एक साँप भी मर गया।

थोड़ी देर वाद दीर्घराव नाम का एक गीदड़ भी उसी रास्ते से निकला। भूख से व्याकुल होकर वह इधर-उधर भटक रहा था। मरे हुए तीन प्राणियों को एक साथ देखकर वह बहुत

प्रसन्न हुआ। मन-ही-मन भाग्य की सराहना करते हुए विचार करने लगा—आज सौभाग्य से मुझे इतना अधिक आहार मिल गया है। इस भोजन से अब मैं निश्चिन्त होकर तीन मास तक निर्वाह कर सकूंगा। एक मास तक तो यह मनुष्य का शरीर मेरा निर्वाह करेगा। हिरण और सूअर को खाकर मैं दो मास तक आनन्द से निर्वाह करूँगा। सर्प और धनुष की डोरी एक-एक दिन के लिए पर्याप्त होगी।

यह विचारकर गीदड़ धनुष की डोरी को ही सबसे पहले खाने लगा। बार-बार चबाने से धनुष की डोरी टूट गई और धनुष की नोक सियार के तालू को छेदकर बाहर निकल आई।

मन्थर बोला : इसलिए मैं कहता हूँ कि संचय करना तो कोई बुरा नहीं, पर अधिक संचय भी नहीं करना चाहिए।

× × ×

मन्थर बोला : अच्छा, छोड़ो इन बातों को। अब हम तीनों यहाँ सुखपूर्वक रहें और पिछली बातों को भुला दें। जिस प्रभु ने इस असार संसार का निर्माण किया है वह हमारा और अखिल विश्व का पालन भी करेगा।

इस प्रकार वहाँ रहते उन्हें पर्याप्त समय व्यतीत हो गया। एक दिन एक हिरण व्याकुल होकर उसी मार्ग से भागता हुआ जा रहा था। उसे देखकर मन्थर पानी में घुस गया। हिरण्यक बिल में घुस गया और लघुपतनक उड़कर वृक्ष की शाखा पर बैठ गया। कुछ क्षण बाद लघुपतनक ने ध्यान से दूर तक देखा। परन्तु जब उसे कुछ भी दिखाई नहीं दिया तो उसने फिर सब को बुला लिया।

हिरण के पास आ जाने पर लघुपतनक बोला : मित्र, तुम

इतने व्याकुल क्यों हो रहे हो ?

हिरण : मित्रो, मेरा नाम चित्रांग है। मै व्याध के भय से भागा-भागा फिर रहा हूँ।

कौआ : मित्र, इस निर्जन वन में तुम्हें किस व्याध का भय सता रहा है ?

हिरण : मित्र, कलिंग देश पर रुक्मांगद नाम का एक राजा राज्य करता है। वह आजकल दिग्विजय करने के लिये देश-देशान्तरों में भ्रमण कर रहा है। मैने व्याधों के मुँह से अभी-अभी सुना है। कल प्रातःकाल वह इसी सरोवर के तट पर आकर अपना डेरा डालेगा। अतः हमें अभी से अपने बचाव का कोई-न-कोई उपाय अवश्य करना चाहिए।

कछुआ बोला : भैया, मैं तो किसी दूसरे तालाब में जाऊंगा।

चूहा और कौवा बोले : यह ठीक है।

बात काटते हुए हिरण बोला : ठीक तो है। पर कछुए को दूसरे तालाब में ले जाना भी कोई आसान काम नहीं है। बेचारे के प्राणो पर आ बनेगी। इसकी रक्षा तो तालाब में ही हो सकती है। स्थल में तो मरण अनिवार्य है। अतः कोई ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे हम अपनी रक्षा कर सकें। क्योंकि उपायों के सहारे ही गीदड़ ने मदमस्त हाथी को भी दलदल में ले जाकर मार दिया।

कौआ बोला : कैसे ?

हिरण ने कहा :

७

युक्ति से कार्य लो

उपायेन हि यच्छक्यं न तच्छक्यं पराक्रमैः ।

° ° ° °

जो कार्य बल अथवा पराक्रम से पूर्ण नही हो पाता, उपाय द्वारा वह सरलता से पूर्ण हो जाता है ।

° ° ° °

ब्रह्मारण्य में कर्पूरतिलक नाम का हाथी रहता था। उसके हृष्ट-पुष्ट शरीर को देखकर सियार सोचने लगे कि यदि किसी उपाय से इसको मार दिया जाये तो इसके शरीर से कई मास का भोजन प्राप्त हो सकता है। कुछ समय पश्चात् एक बूढे सियार ने प्रतिज्ञा की कि मैं उपायों द्वारा इस हाथी को मार डालूंगा। तत्पश्चात् वह सियार हाथी के पास गया और बोला

सियार : महाराज, कृपया मेरी बात सुने !

हाथी : तू कौन है ? कहां से आया है ?

सियार : महाराज, मै सियार हूँ। समस्त वनवासियो ने परस्पर सलाह करके मुझे आपके पास भेजा है और कहा है कि बिना राजा के समस्त वनखण्ड हमें नही सुहाता। अतः

आपको इस वन का राजा चुना जाये और आज ही राज्याभिषेक कर दिया जाये। मैं आपसे नियत स्थान पर पधारने का अनुग्रह करने आया हूँ। लग्न का समय बहुत ही निकट है, अतः कृपया आप शीघ्र ही चलें।

सियार की इन लोभ-भरी भोली-भाली बातों में आकर हाथी उठकर उसी समय सियार के साथ भागा। मार्ग में वह बड़े गहरे दलदल में फँस गया। उसने दलदल से निकलने का बहुत प्रयत्न किया; पर जब न निकल सका तो सियार से बोला : मित्र, मैं तो दलदल में फँस गया। अब बताओ क्या करना चाहिए !

गीदड़ हँसकर बोला : महाराज, मैं अब आपकी क्या सहायता कर सकता हूँ। आप चाहे तो मेरी पूँछ पकड़ लें और दलदल से बाहर निकल आयें।

× × × ×

इसीलिए चतुर मनुष्य को चाहिए कि जो कार्य बल से पूर्ण न हो सके उसे उपायों से पूर्ण करे।

हिरण की बात सुनकर भी कछुए को धैर्य न हुआ और वह भयभीत होकर बिना विचारे सबके साथ पैदल ही चलने लगा। उसी वन में कोई शिकारी शिकार की खोज में घूम रहा था। उसने कछुए को पृथ्वी पर चलता देखकर उठा लिया और अपने घर की राह ली।

अपने मित्र को इस भांति मृत्यु के मुँह में जाते देखकर हिरण, कौए और चूहे को अत्यधिक संताप हुआ। वे लोग भी शिकारी और कछुए के पीछे-पीछे चलने लगे।

चूहा सोचने लगा कि भाग्य की कैसी महिमा है। पह

दुःख समाप्त भी नही हो पाता कि दूसरा सामने आकर खड़ा हो जाता है। इसी भाँति सब एक ही हृदय से दैव को कोसने लगे। कुछ समय तक विचार करने और सोचने के उपरान्त लघुपतनक बोला : मित्रो, इस प्रकार विलाप करने से कुछ लाभ नही होगा। आओ, मिलकर मित्र को छुड़ाने का प्रयत्न करें।

तीनों ने लघुपतनक का कहना स्वीकार किया और चित्रांग (हिरण) एक सरोवर के तट पर पहुँचकर अपने को मृतवत् दिखाता हुआ लेट रहा। कौआ उसके शरीर पर अपनी चोंच मारने लगा। उसी मार्ग से जाते हुए शिकारी ने हिरण को देखते ही हाथ के कछुए को वहीं पृथ्वी पर सरोवर के तट पर रख दिया और कैंची लेकर हिरण की ओर वढ़ा। इतने में ही झाड़ी मे छिपे हिरण्यक (चूहे) ने कछुए के बन्धन काट दिये और कछुआ उसी समय शीघ्रता से उछल-उछलकर सरोवर में घुस गया। उधर शिकारी को अपनी ओर आता देखकर हिरण भी एक ही छलांग में शिकारी के पञ्जे से बाहर हो गया। एक को छोड़कर दूसरे को पाने की लालसा करने वाला शिकारी अपनी करनी को कोसता हुआ शहर की ओर चल दिया। मन्थर आदि मित्र भी समस्त आपदाओं से मुक्त होकर वहाँ सानन्द रहने लगे।

× × × ×

कथा सुनने के उपरान्त राजपुत्र बोले : गुरुदेव, आपकी कृपा से इस नीतिपूर्ण कहानी को सुनकर हमें प्रसन्नता हुई।

विष्णुशर्मा : तुम्हारी ही भांति भगवान् सबको सुख और शान्ति प्रदान करे।

॥ पहला खंड समाप्त ॥

द्वितीय खण्ड

सुहृद्भेद

वर्धमानो महान् स्नेहः मृगेन्द्र वृषयोर्वन
पिशुनेनाति लुब्धेन जम्बुकेन विनाशितः ।

° ° ° °

सिंह और बैल की बढ़ती हुई मित्रता को लोभी
और चुगलखोर सियार ने नष्ट कर दिया ।

° ° ° °

इस खण्ड की कथा-सूची——

राजपुत्रों ने विष्णुशर्मा को प्रणाम करके कहा . गुरुदेव ! हमने मैत्री के लाभ समझ लिये। अब कृपया आप हमे कोई दूसरा प्रसग सुनाइए।

विष्णुशर्मा बोले : राजपुत्रो ! अब हम आप लोगों को मित्रों में भेद डालने वाली शेर, बैल और सियार की नीति-कथा सुनाते है।

राजपुत्र बोले वह क्या कथा है गुरुदेव !

विष्णुशर्मा बोले सुनो—



१

नीतिकुशल सियार

वर्धमानो महान् स्नेहः मृगेन्द्र वृषयोर्वने
पिशुनेनाति लुब्धेन जम्बुकेन विनाशितः ।

० ० ० ० ०

सिंह और बैल की बढ़ती हुई मित्रता को
लोभी और चुगलखोर सियार ने नष्ट कर दिया ।

० ० ० ० ०

दक्षिण दिशा में सुवर्णवती नाम की नगरी है। किसी समय इसी नगरी में वर्धमान नाम का धनी व्यापारी रहता था। उसके पास अतुल धन-राशि थी। फिर भी वह धनोपार्जन में लीन रहता था। एक दिन उसने नन्दक और संजीवक

नाम के दो बैलों को अपनी गाड़ी में जोता और भांति-भांति का सामान उस पर लादकर काश्मीर की ओर चल दिया। अभी वह नगर से बाहर निकला ही था कि उसे उसका पुराना मित्र मिल गया। वर्धमान को इस प्रकार व्यापार के लिये जाते देखकर वह बोला : मित्र वर्धमान, तुम्हारे पास तो अपार धन-राशि है, अब तुम और भी धन जमा करने मे क्यों लगे हुए हो ?

वर्धमान बोला : मित्र अपने को अपूर्ण समझने वाला व्यक्ति एक-न-एक दिन अवश्य पूर्ण हो जाता है। क्योंकि वह सदा प्रयत्नशील रहता है। इसके विपरीत अपूर्ण होते हुए भी अहंकारवश अपने को पूर्ण समझने वाला व्यक्ति दरिद्र हो जाता है। मनुष्य को कभी धन की अधिकता देख निश्चेष्ट नही होना चाहिए। जल की एक-एक बून्द से घड़ा भर जाया करता है। मै भी बार-बार थोड़ा-थोड़ा धन उपार्जित करूँगा तो एक दिन यही अल्प धन अपार धन बन जायेगा।

इस प्रकार अपने मित्र को समझाकर वह व्यापारी आगे बढ़ा। मार्ग मे सुदुर्ग नाम के निविड़ वन में पहुँचकर सजीवक बैल गिर पड़ा और उसकी एक टाँग टूट गई।

सजीवक के अचानक गिर पड़ने से वर्धमान को बड़ा दुःख हुआ। इस विघ्न के कारण वह वही जगल मे ठहर गया और विचार करने लगा :

चतुर व्यक्ति चाहे किसी भी चतुरता से इधर-उधर जाकर पुरुषार्थ करे, उसका अच्छा या बुरा फल तो विधाता के हाथ में है। अब क्या किया जाये ? उसी समय उसे ध्यान आया—

आपत्ति में कभी भी घबराना नहीं चाहिए । क्योंकि घबराना ही किसी भी काम में सबसे बड़ा विघ्न है । अब तो जैसे भी हो सके उपाय करना चाहिए । यह विचार कर वह संजीवक को वहीं छोड़कर पास के धर्मपुर नाम के शहर में गया । वहाँ से एक और हृष्ट-पुष्ट बैल को ले आया । उसे गाड़ी में जोतकर वर्धमान तो अपने व्यापार के लिए काश्मीर की ओर चला गया और इधर संजीवक जैसे-तैसे अपने तीन पैरों पर खड़ा हुआ और स्वतन्त्रतापूर्वक वन में विचरने लगा । वन में उसके भाग्य ने उसकी सहायता की । स्वेच्छापूर्वक खाने-पीने के कारण वह बहुत बलवान हो गया ।

उसी वन में पिंगलक नाम का सिंह राज्य करता था । दमनक और करटक नाम के दो उसके मन्त्री के पुत्र थे । ये दोनों प्राय: पिंगलक के साथ रहते । एक दिन पिंगलक पानी पीने की इच्छा से यमुना नदी की ओर गया । वहाँ उसने मेघ-गर्जन के समान किसी का शब्द सुना । वह विचार करने लगा—यह किसकी गर्जना है ? उसे इस गर्जना से इतना भय हुआ कि उसका रंग फीका पड़ गया और वह बिना पानी पिये ही वापस लौट आया ।

पास ही खड़ा हुआ दमनक यह सब देख रहा था । उसे बड़ा आश्चर्य हुआ । वह अपने साथी करटक से बोला : न जाने क्यों आज महाराज पिंगलक बिना जल पिये ही नदी से वापस चले आये । अब उन्हें देखो कितने उदास बैठे हैं !

अरे भाई ! छोड़ो भी इन बातों को, हमारी बला से । हम तो सेवक-वृत्ति से ही दूर रहेंगे । यह भी कोई जीवन है ? देखो भी, सेवक कितना मूर्ख होता है । सदा उन्नति पाने के

लिए अपना मस्तक झुकाए रहता है। सुख भोगने के लिए दु.खों के पहाड़ ढोता है। स्वयं जीवित रहने के लिए अपने प्राणों तक की वलि दे देता है। करटक ने उत्तर दिया.

कुछ भी हो ! जिसे एक बार स्वामी स्वीकार कर लिया उसकी सेवा करना, उसकी कुशल-क्षेम पूछना हमारा प्रथम कर्त्तव्य है।

यह हमारा नहीं, राजा के मन्त्री का कर्त्तव्य है। हम जिस काम के लिए है वही करे अन्यथा हमारा वही हाल होगा जो कील उखाड़ने वाले वन्दर का हुआ था।

दमनक वोला : भाई, यह कथा मुझे भी सुनाओ।

करटक वोला : सुनो···

२

जिसका काम उसी को साजे

अव्यापारेषु व्यापारं यो नरः कर्तुमिच्छति
स भूमौ निहतः शेते कीलोत्पाटीव वानरः।

० ० ० ०

जो दूसरे के कर्त्तव्य कार्य को स्वयं करके अनधिकार चेष्टा करता है वह शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होता है।

० ० ० ०

मगध देश में धर्मारण्य के पास शुभदत्त नाम का कायस्थ बौद्धसंन्यासियों के निवास के लिए विहार बनवा रहा था। विहार के आस-पास मकान बनाने की लकड़ियाँ पड़ी थी। उन्ही में एक लकड़ी को बीच से थोड़ा-सा चीरकर उसे अलग-अलग रखने की इच्छा से बढ़ई ने उसमें एक कील लगा दी थी। इतने मे ही जंगल से खेलता-कूदता एक वन्दरों का समूह उधर से निकला। इस समूह मे से एक बन्दर उस लकड़ी पर चढ़ गया और उसके बीच की कील दोनों हाथों से पकड़कर निकालने लगा। बड़े प्रयत्न से उसने कील को निकाल लिया। कील के निकलते ही बन्दर का पिछला भाग उन दोनों खण्डों के बीच में फँस गया और वह उसमें दबकर मर गया।

जिस काम की पूरी पहचान न हो उसमे दखल नही देना चाहिए।

करटक ने आगे कहा : दूसरे का काम करना तो हानि-कारक है ही, यदि उस काम से स्वामी का लाभ होता हो तब भी हानिकारक ही है।

दमनक बोला : वह कैसे ?

करटक बोला : सुनो।

३

अपने काम से काम

पराधिकारचर्चां यः कूर्याद् स्वामिहितेच्छया,
स विषीदति चीत्कारादृगर्दभस्ताडितो यथा।

० ० ० ०

स्वामी की भलाई की कामना से भी जो अनधिकार चेष्टा करता है वह पिटने वाले गधे की तरह दुःखी होता है।

० ० ० ०

बनारस में कर्पूरपटक नाम का धोबी रहता था। उसके पास एक गधा और एक कुत्ता था। दोनों उसके आँगन मे बँधे रहते। एक रात्रि को वह गाढ निद्रा में सो रहा था कि उसके घर में एक चोर आ गया। कुत्ता और गधा दोनों ने चोर को आते देखा, पर जब कुत्ता बोला ही नही तो गधा उसे फटकारते हुए बोला :

मित्र, चोर आ गया और तुम चुपचाप आराम से बैठे हो। तुम्हे नही मालूम कि चोर के आने पर तुम्हारा पहला कर्त्तव्य है कि तुम शोर मचाकर स्वामी को जगा दो।

कुत्ता बोला : भाई तुम मेरे कर्त्तव्य की चिन्ता न करो। तुम्हें क्या मालूम नहीं, मै दिन-रात इसके घर की रक्षा करता

हूँ इसलिए बहुत दिनो से कोई चोरी नहीं हुई। आज यह मेरे उपकार भूल गया और भरपेट खाना भी नही देता।

गधा क्रोध मे आकर बोला : मूर्ख ऐसा सेवक भी किस काम का, जो काम के समय स्वामी से मागना प्रारम्भ कर दे।

तू समय पड़ने पर स्वामी-कार्य की उपेक्षा करता है। मै तो स्वामी का सच्चा सेवक हूँ। मै अपने स्वामी को अवश्य जगाऊँगा।

यह कह गधे ने तार-स्वर से चिल्लाना शुरू किया। नीद खुल जाने के कारण स्वामी को गधे पर बहुत क्रोध आया। चोर तो भाग गए पर गधे को इतनी मार पड़ी कि वह अधमरा हो गया।

इसलिए कहते है अपने काम से काम रखो। दूसरे के काम मे दखल न दो।

× × × ×

धोवी और गधे की कहानी सुनाकर करटक बोला : तभी तो मै कहता हूँ कि हमें दूसरे के काम में हाथ नही डालना चाहिए। पिंगलक का अवशिष्ट भोजन तो हमे मिल ही जाता है, फिर हम क्यों किसी बात की चिन्ता करे।

दमनक · केवल भोजन ही तुम्हारे जीवन का लक्ष्य है। जिसका खाते हो, उसकी तुम्हें कुछ भी चिन्ता नही।

करटक : हम कौन से पिगलक के प्रधान मन्त्री है। हम तो उप-प्रधान है। जव वह ही हमे नही पूछता तो हम ही क्यों उसकी चिंता करें ?

दमनक : तुम नही जानते करटक ! स्वामी, स्त्री, और

लता अपने निकट रहने वाले को ही अपना लेते हैं।

करटक . अस्तु, तुम्हारा अभिप्राय क्या है ? तुम करना क्या चाहते हो ?

दमनक : सुनो, हमारा राजा आज भयभीत है। इसकी आकृति नहीं देखते, चेहरे का रग उतर गया है।

करटक : तो तुम क्या करोगे ?

दमनक : मै राजा के पास जाकर राजनीति के अनुसार उसकी यह चिन्ता दूर करूँगा।

करटक : फिर क्या ?

दमनक : फिर, फिर वह हमारे वश में हो जायेगा, और हमारे दिन आनन्दपूर्वक कटने लग जायेंगे।

करटक : यदि ऐसा है तो जाओ, भगवान् तुम्हारा कल्याण करे।

चतुर दमनक करटक से विदा लेकर पिंगलक की राजसभा की ओर बढ़ चला। वहाँ उसने देखा—भालू, चीता, हाथी और न जाने कितने पशु उसके दरबार में बैठे है। दमनक को आते देखकर पिगलक ने द्वारपाल को संकेत से कहा कि उसे बिना रोक-टोक आने दिया जाये। दमनक को राजा ने सभा में समुचित स्थान दिया और फिर बोला :

मन्त्रीपुत्र ! आज बहुत समय बाद आपने राज-सभा मे दर्शन दिये !

दमनक : महाराज, यदि आपको मुझसे कोई कार्य नही तो समय पर आपकी सेवा मे उपस्थित होना मेरा तो परम-धर्म है। मै क्षुद्र जीव हूँ तो क्या हुआ ? एक छोटा-सा तिनका भी समय पर काम आता है। फिर मै तो हाथ-पैर वाला चलता-

फिरता सजीव प्राणी हूँ।

पिंगलक : तुम यह क्या कहते हो बेटा, तुम तो हमारे भूतपूर्व मन्त्री के सुपुत्र हो ! साथ ही नीतिज्ञ भी हो ! तुम्हें यहाँ आने से किसने रोका ? मै तो सहर्ष तुम्हारी सेवा स्वीकार करना चाहता हूँ।

दमनक ने देखा स्वामी इस समय मुझ पर अत्यधिक प्रसन्न हैं। अतः वह वोला :

स्वामी, मै आपसे एकान्त में कुछ वात पूछना चाहता हूँ। आप आज्ञा करें तो· ····।

पिंगलक ने सव को एक ओर कर दिया और दमनक को अपने पास वुलाकर कहा :

कहो मन्त्री-पुत्र !

दमनक : महाराज, मै पूछना चाहता हूँ कि आप यमुना-तट पर पहुँचकर भी विना पानी पिए वापस क्यों लौट आए ?

पिंगलक : वेटा, यह तुम्हारा भ्रम है ! कुछ भी तो नही था !

दमनक : स्वामी, मै आपका सेवक हूँ। आप यदि मुझे वता देंगे तो मै आपकी कुछ सेवा कर सकूँगा। हाँ, यदि आप न वताना चाहें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।

पिंगलक गम्भीर होकर सोचने लगा। फिर कुछ समय उपरान्त वोला :

तुम्हारा विचार ठीक है। मै तुम्हे वता रहा हूँ, पर यह वात गुप्त रहनी चाहिए। इस वन में अव कोई महान् वलशाली पशु आ गया है। उसकी हुंकार मेघ-गर्जन के समान है। जिसकी हुंकार ही इतनी डरावनी है वह स्वयं कितना वलवान्

होगा, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। अतः अब मैंने निश्चय कर लिया है कि शीघ्र ही इस वन को छोड़कर किसी दूसरे वन मे चला जाऊँ।

दमनक : महाराज, उस भयानक गर्जना को मैंने भी सुना है। मैंने अपने जीवन में तो ऐसी गर्जना सुनी नहीं। पर महाराज आप वन छोड़कर क्या करेंगे ?

पिंगलक : वन छोड़कर युद्ध की तैयारी करूँगा और इस पर विजय प्राप्त करूँगा। मै अपने शत्रु को जीवित नही देख सकता।

दमनक : महाराज, वह मन्त्री योग्य नही होता जो स्थान छुड़ाकर फिर युद्ध करने की मन्त्रणा दे। यदि आपकी आज्ञा हो तो मै ही इस भार को अपने कन्धों पर ले लूं और उस बलवान से आपकी संधि करा दूं।

पिंगलक : यदि तुम ऐसा कर सको तो मै तुम्हें प्रधान-मन्त्री-पद दे दूंगा।

इतना कहकर पिंगलक ने बहुत-सा पुरस्कार देकर दमनक और करटक को विदा किया।

मार्ग मे करटक दमनक से बोला : दमनक, स्वामी का कार्य किये बिना इतना अधिक पुरस्कार लेकर तुमने अच्छा नही किया।

दमनक मुस्कराकर बोला : भाई तुम चुप भी रहो। मैं स्वामी के भय का कारण जानता हूं। वह हुंकार बैल की थी। तुम जानते ही हो कि बैल हमारा खाद्य पदार्थ है। फिर उससे कैसा भय ?

करटक : यदि तुम यह जानते थे तो तुमने महाराज को

यह सब पहले ही क्यो नही बता दिया ?

दमनक फिर हँसा और बोला : भाई तुम तो निरे भोले हो ! यदि हम महाराज को यह पहले ही बता देते तो हमे इतना पुरस्कार कैसे प्राप्त होता ? स्वामी को कभी भी निश्चिन्त नही करना चाहिए । ऐसा करने से सेवक का वही हाल होता है जो दधिकर्ण का हुआ था ।

करटक : वह क्या ।

दमनक : सुनो···

४

स्वार्थ का संसार

निरपेक्षो न कर्त्तव्यो भृत्यैः स्वामी कदाचन।

० ० ० ०

सेवक कभी भी स्वामी को निरपेक्ष न करे।

० ० ० ०

उत्तर दिशा में अर्बुद शिखर नाम के पर्वत पर दुर्दान्त नाम का सिंह रहता था। जिस गुहा मे वह रहता था, उसी में एक चूहा भी रहता था। शेर जब आहार करके उस गुहा में विश्राम करता तो वह चूहा अपने बिल से निकलता और सिंह के केशों को कुतरा करता। शेर जब सोकर उठता तो अपने केशों को कुतरा देखकर उसे बहुत क्रोध आता। पर महान् पराक्रमशाली होने पर भी वह चूहे का कोई भी अपकार नही कर सकता था। अन्त में एक दिन चूहे को घूमते देखकर उससे न रहा गया। उसने चूहे को पकड़ने के लिए अपना पञ्जा बढ़ाया। पर चूहा उसका पञ्जा बढ़ने से पहले ही बिल मे जा चुका था। वह खीज उठा। कुछ समय बाद उसने सोचा, छोटे शत्रु का महान् पराक्रमी भी कुछ नही बिगाड़ सकता। उसके नाश के लिए उसके समान ही कोई सैनिक होना चाहिए।

यह विचार आते ही वह चूहे के लिए एक विलाव को ढूंढने निकला। ढूढ़ते-ढूंढते वह एक ग्राम में पहुँच गया। वहाँ उसने विलाव को वुलाया। पहले तो विलाव भय से काँपने लगा, पर सिंह का आश्वासन पाकर वह उसके पास गया। सिंह ने अपनी मीठी-मीठी वातों से विलाव को फुसलाया और फिर उसे अपनी गुहा में ले गया।

अव सिंह नित्य उसे ताजा मांस लाकर देता और आदर-पूर्वक खिलाता। उससे वडी मीठी-मीठी वातें करता। इधर विलाव को देखकर चूहे ने भी अपने विल से निकलना वन्द कर दिया। सिंह को अव चूहे का भय न रहा और वह निश्चिन्त होकर सोने लगा। पर सिंह यह जानता था कि चूहा अव भी विल मे है। क्योकि वह कभी-कभी विल मे शव्द किया करता था। जव-जव चूहा शव्द करता, सिंह विलाव को त्यो-त्यों और अधिक स्वादिष्ट मांस लाकर दिया करता।

एक दिन दुख से अधिक व्याकुल होकर चूहा अपने विल से निकला। उसे देखते ही विलाव ने उसे मार डाला और खा लिया। इसी तरह कई दिन वीत गए। पर सिंह ने चूहे का जव शव्द नही सुना तो वह समझ गया कि चूहे को विलाव ने खा लिया। सिंह ने अव विलाव को मांस देना वन्द कर दिया। यहाँ तक कि विलाव भूखों मरने लगा और गुहा छोड़-कर भाग गया।

दमनक : इसीलिये मै कहता हूँ कि सेवक को कभी निरपेक्ष नहीं करना चाहिये।

तदुपरान्त दमनक और करटक सञ्जीवक के पास गये। दमनक के इशारे से करटक एक वृक्ष के नीचे अकड़कर वैठ

गया। दमनक संजीवक से बोला :

ओ बैल ! मेरी ओर देख। मै महाराजाधिराज पिंगलक की ओर से वन की रक्षा के लिये नियुक्त किया गया हूँ। वह देखो, हमारा सेनापति करटक तुम्हें आज्ञा देता है कि तुम शीघ्र ही हमारे वन की सीमा से बाहर चले जाओ। हमारे स्वामी ज़रा-ज़रा-सी बातों पर गरम हो जाते हैं। क्रोध मे क्या कर बैठे, कोई कुछ कह नही सकता।

यह सुनते ही संजीवक करटक के सामने हाथ जोड़कर खड़ा होगया और बोला :

सेनापते !

करटक : ओ बैल ! यदि तू इस वन मे रहना चाहता है तो चलकर हमारे स्वामी को प्रणाम कर।

संजीवक : स्वामी ! कौन स्वामी ?

करटक : हमारे स्वामी महाराधिराज सिह पिंगलक। उसके पास ही तुम्हें जाना होगा।

संजीवक के होश उड़ गये। वह डरते-डरते बोला :

सेनापति, पहले मुझे अभय वचन दो।

करटक—ओ मूर्ख बैल, तू इतना क्यों डरता है। वह तो महापराक्रमी सिंह है। तुझ जैसे तृणाहारी जीव को मारना तो वह अपना तिरस्कार समझता है। मूर्ख बैल ! तेरी यह आशंका तो नितान्त निर्मूल है। सिह यदि गर्जता है तो मेघ गर्जन के प्रत्युत्तर मे। वह कभी भी सियारों का शब्द सुनकर थोड़े ही गर्जन करता है ?

इतना समझाकर दोनों संजीवक को अपने साथ ले गये। पिंगलक के दरबार के निकट पहुँचकर उन्होंने संजीवक को

दूर ही एक ओर खड़ा कर दिया और स्वयं पिंगलक के पास गये।

पिंगलक . मन्त्री, तुमने उसको देखा ? वह कौन था ?

दमनक : हाँ, महाराज, हमने उसे देखा। जैसा आपने सोचा था वह वैसा ही निकला। पर आप शान्त-चित्त होकर बैठ जाये और मेरी बात सुने। केवल शब्द से ही भयभीत न हों क्योंकि शब्द-मात्र से ही नही डरना चाहिये। उसका कारण जानना चाहिये। कारण जानने पर कुट्टिनी को सम्मान प्राप्त हुआ था।

पिंगलक . वह क्या कथा है ?

दमनक : सुनो महाराज !

५

कारण जानो

ज्ञातव्यं शब्द कारणम्

॰ ॰ ॰ ॰

केवल शब्द सुनकर ही भयभीत न होना चाहिए। उसका कारण भी जानना चाहिए।

॰ ॰ ॰ ॰

श्री नाम के पर्वत पर ब्रह्मपुर नाम का एक नगर था। इस पर्वत की चोटी पर घण्टाकर्ण नाम का राक्षस रहता है' यह जनश्रुति उस समय प्रचलित थी। कारण यह था कि किसी समय एक चोर घण्टा चुराकर उस मार्ग से जा रहा था कि मार्ग में उसे भेड़िये ने मारकर खा लिया। उसके घण्टे को वन्दरों ने उठा लिया। वन्दर उस घण्टे को वारी-वारी से वजाते रहते। मरे हुए आदमी का ढाँचा देखकर और घण्टे का स्वर सुनकर नगरवासियों ने अनुमान लगाया कि अवश्य कोई राक्षस इस शिखर पर रहता है। वह मनुष्यों को खाता है और घण्टा वजाता है।

प्रतिक्षण घण्टे का स्वर सुनकर करला नाम की कुट्टिनी ने विचार किया कि कहीं पर्वत पर रहनेवाले वन्दर ही तो इस

घण्टे को नहीं वजाते ? कुछ विचार करने के वाद वह राजा के पास गई और बोली :

महाराज यदि आप कुछ धन व्यय करे तो मैं उस राक्षस को वश मे कर सकती हूँ।

राजा ने उसे प्रचुर घन दिया। वह पर्वत की चोटी पर गई; वहाँ एक सुन्दर मण्डप वनाया। गणेश आदि का पूजन करवाया और फिर बन्दरो के लिये फल लेकर वह पर्वत के शिखर पर चढ़ गई। वहाँ उसने देखा, बन्दर घण्टा वजा रहे थे। फिर. क्या था ? उसने वहाँ फल विखेर दिये। बन्दर फलों की ओर झपटे और वह घण्टा लेकर वापस चल दी।

'करला ने घण्टाकर्ण को वश मे कर लिया है' यह जनश्रुति नगर मे फैल गई और उसका आदर होने लगा।

× × × ×

दमनक : महाराज, इसलिये आप उससे मित्रतापूर्वक वात करे। भयभीत न हो।

इतना कहकर उन्होंने संजीवक को पिंगलक के सम्मुख उपस्थित किया और उन दोनों की मित्रता करा दी। संजीवक भी सिंह का मित्र वनकर वही सुख-सहित रहने लगा।

एक दिन पिंगलक का भाई स्तब्धकर्ण वहाँ आया। उसका अतिथि-सत्कार करने के उपरान्त पिंगलक भोजनादि की व्यवस्था करने के लिये संजीवक के साथ वन की ओर निकल पड़ा।

संजीवक : मित्र, आज मारे हुए हिरणों का मांस कहाँ है ?

पिंगलक : वह तो दमनक और करटक ही जानते हैं।

संजीवक : उनसे पूछिये भी कि है भी या नही ?

पिगलक : मित्र, होगा नहीं, उन्होंने खा लिया होगा।

संजीवक : तो क्या वे लोग अकेले ही इतना मांस खा गये होगे ?

पिंगलक : कुछ खा लिया होगा, कुछ वांट दिया होगा और कुछ फेक दिया होगा।

संजीवक : मित्र, यह तो अनुचित है। मन्त्री कमण्डलू की भॉति होना चाहिये। बिना विचारे व्यय करने वाले कुबेर का भाण्डार भी एक दिन समाप्त हो जाता है।

संजीवक की बात सुनकर स्तव्धकर्ण भी पिंगलक को समझाते हुए बोला :

भाई, चिरकाल से कार्यरत सेवक के हाथ मे कोष नही देना चाहिये। इनको तो सन्धि-विग्रह के कार्यो मे लगाओ। कोपाध्यक्ष के कार्य के लिये तो यह तृणाहारी संजीवक ही योग्य है।

स्तव्धकर्ण की इस सलाह पर पिगलक ने संजीवक को कोषाध्यक्ष नियुक्त कर दिया। अव दमनक और करटक की स्वतन्त्रता और स्वार्थ-परायणता समाप्त हो गई। वह सोचने लगे कि अव क्या किया जाय ? उनके आश्रित भाई-वन्धुओं का सुख भी अव छिन गया। करटक ने दुखी होकर पूछा :

मित्र, अव क्या करना चाहिये ?

दमनक : यह तो अपने किये का ही फल है। इसके लिये किसी दूसरे को दोष देना व्यर्थ है ? वीर विक्रम और साधु भी तो अपने किये से दुःखी हुए।

करटक : वीर विक्रम की क्या कथा है ?

दमनक : सुनो······

६

बिना विचारे जो करे

प्रायः समापन्न विपत्ति काले,
धियोऽपि पुंसां मलिना भवन्ति ।

• • • •

विपत्ति के समय महात्माओ की बुद्धि
भी मलिन हो जाती है।

• • • •

एक समय सिंहलद्वीप मे बलशाली जीमूतवाहन नाम का राजा राज्य करता था। एक दिन किसी पोतस्थित वणिक के मुंह से उसने सुना कि चतुर्दशी के दिन समुद्र मे से एक कल्पवृक्ष प्रगट होता है, जिस पर रत्नों से जटित एक पलंग बिछा रहता है। उसी पलंग पर अपनी कोमल उँगलियों से वीणा बजाती हुई एक कन्या दिखाई देती है।

यह बात सुनकर जीमूतवाहन को महान् आश्चर्य हुआ। वह निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा। ठीक चतुर्दशी वाले दिन राजा ने भी वीणा बजाते हुए उस कन्या को देखा। वह कन्या आधी तो जलमग्न थी और आधी जल से बाहर। राजा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। साहसी राजा ने कन्या तक पहुँचने की लालसा से समुद्र मे गोता लगाया।

राजा बहुत समय तक जल में रहने के बाद कनकपत्तन नाम के नगर में पहुँचा। उसे और अधिक आश्चर्य हुआ जब उसने वहाँ भी उसी कन्या को पलंग पर बैठकर वीणा वजाते देखा। कन्या के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर राजा वही मूर्तिवत् खड़ा रहा।

कुछ ही समय बीता था कि कन्या की एक सहेली राजा के पास आई। राजा ने उत्सुकतापूर्वक पूछा :

परिचारिके ! पलंग पर बैठकर मधुर वीणा बजाने वाली यह कौन कन्या है ?

परिचारिका : यह विद्याओं के राजा कन्दर्पकेलि की पुत्री है। रत्नमञ्जरी इसका नाम है। इसकी प्रतिज्ञा है कि जो सर्वप्रथम कनकपत्तन में आकर मुझे देखेगा, वही मेरा पति होगा। मैं उसी से जैसे भी होगा विवाह अवश्य करूँगी।

सेविका राजा को रत्नमञ्जरी के पास ले गयी। दोनों ने गान्धर्व विवाह कर लिया और राजा वही सानन्द रहने लगा। एक दिन रत्नमञ्जरी ने कहा—महाराज, यहाँ पर आप जितनी वस्तुएँ देखते है वे सब आपके ही उपभोग की है। परन्तु इस विद्याधरी नाम की स्वर्ण रेखा को कभी भूलकर भी न छूना।

रत्नमञ्जरी की वात सुनकर राजा की उत्सुकता वढ़ गई। वह सोचने लगा—इस स्वर्णरेखा में ऐसी कौन-सी विशेषता है जो रत्नमञ्जरी ने इसे छूने तक के लिये मना किया। उसका कौतूहल वढता ही गया और यहाँ तक वढ़ गया कि राजा ने उस स्वर्ण रेखा को छू लिया। राजा ने उसे केवल चित्रमात्र समझा था। पर ज्योही उसने उसे छुआ, रेखा ने पाद-प्रहार

किया और राजा अपने देश मे आकर गिरा। दुःखी होकर अव वह देशान्तरो में घूमने लगा।

दमनक आगे वोला अव साधु की भी कहानी सुनाता हूँ।

७

लोभ का फल

अति लोभो न कर्तव्यः

० ० ० ०

वहुत लोभ नही करना चाहिए।

० ० ० ०

एक बार कोई वणिक अपने घर से निकल पड़ा। वह मलयगिरि पर पहुँचा और वहाँ वारह वर्ष तक व्यापार करता रहा। एक दिन वह अपनी सारी सम्पत्ति लेकर इस नगर में चला आया। यहाँ वह जिस स्थान पर ठहरने गया, वह एक वेश्या का था। वेश्या के आंगन में एक कठपुतली थी जिसके मस्तक पर एक वहुमूल्य मणि सुशोभित थी। लोभी वनिए का मन उस मणि को लेने के लिए ललचाया। वह रात को उठा और उस कठपुतली की मणि को निकालने लगा। अचानक उसी समय कठपुतली ने उसे अपनी दोनों भुजाओं से जकड़ लिया। कठपुतली ने उसे इतनी जोर से पकड़ा कि वह चिल्लाने लगा। उसकी चीख सुनकर वेश्या भी वहीं आगई और वोली :

श्रीमान् जी, आप मलयगिरि से आ रहे हैं। जितना भी

धन आपके पास हो, रख दें। तभी यह कठपुतली आपको छोड़ेगी।

वेश्या ने उसका सारे का सारा धन वहीं रखा लिया और तब उसे छोड़ा।

अब बेचारा वह निर्धन होने के कारण साधु होकर भिक्षाटन करता है।

× × × ×

दमनक . अतएव मै कहता हूँ कि स्वयं ही अपराध कर के पछताने से कुछ भी लाभ नही। मैंने अब इसका उपाय भी सोच लिया है। जिस प्रकार मैंने शेर और बैल की मैत्री कराई उसी प्रकार भंग भी कर सकता हूँ।

करटक . मित्र, इनकी मैत्री अब बहुत गहरी हो गई है। उसे भंग करना सहज काम नही।

दमनक : तुम चिन्ता न करो। जो काम पराक्रम अथवा किसी दूसरी विधि से नही हो सकता वह उपायों द्वारा हो सकता है। इन्ही उपायों के बल पर तो कौए की स्त्री ने साँप को मरवा डाला।

करटक : यह कैसे हुआ ?

दमनक : सुनो ··

८

युक्ति से काम लो

उत्पन्नेष्वपि कार्येषु मतिर्यस्य न हीयते।

० ० ० ०

संकट उपस्थित होने पर भी जिसकी बुद्धि विचलित नही होती, वह कार्य में सफल हो जाता है।

० ० ० ०

किसी वृक्ष पर एक कौआ सपत्नीक रहता था। वह बहुत पुराना वृक्ष था। उसके खोखले मे एक सर्प भी रहने लगा। एक वार कौए के बच्चों को साँप ने खा लिया। कौआ और उसकी पत्नी को इस घटना से वहुत दु:ख हुआ। पर वे सर्प का कुछ बिगाड न सके। क्योकि वह उनसे अधिक वलवान् था।

कुछ समय वाद कौए की पत्नी फिर से गर्भवती हुई और कौए से वोली

स्वामी, अव हमे शीघ्र ही यह वृक्ष छोड़ देना चाहिए। क्योकि मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि पुत्रों के जन्म लेते ही यह दुष्ट उन्हे अवश्य खा जायेगा। मुझे तो अभी से उनकी रक्षा की चिन्ता सता रही है। शास्त्रों में कहा भी है—

ससर्पे च गृहे वासः मृत्युरेव न संशयः।

सर्प वाले गृह मे रहना मृत्यु का आह्वान करने के बराबर है।

कौआ . तुम भय मत करो। अभी तक तो मैं उसके अपराधो को क्षमा करता आया हूँ, पर इस बार मैं कभी भी क्षमा नही करने का।

काकी हँसते हुए बोली : उससे आप लड़ेंगे ? आपको नही मालूम सर्प कितना बलवान् होता है।

कौआ : ऐसी शंका करना व्यर्थ है। बुद्धिबल से बड़े-से-बड़े शत्रु पर भी विजय प्राप्त की जा सकती है। यदि तुम्हे विश्वास न हो तो सुनो मैं तुम्हे सिंह और खरगोश की कहानी सुनाता हूँ।

काकी : सुनाइए !

६

अक़्ल बड़ी कि भैंस

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य, निर्बुद्धेस्तु कुतो बलं।

० ० ० ०

जिसके पास बुद्धिबल है वही बलवान है।
अन्यथा बुद्धिहीन बल से क्या लाभ ?

० ० ० ०

मन्दर पर्वत पर दुर्दान्त नाम का सिह रहता है। सारे पर्वत पर उसके समान कोई दूसरा बलवान् पशु नहीं था। इसलिए वह मनमाने ढंग से पशुओं को मारकर खा जाया करता था। जितने पशु वह खा सकता था उससे अधिक वह वध कर देता था।

पशुओं की इस बेकार बलि को देखकर पर्वत के पशु भय से कांप उठे। उन्होंने मन्त्रणा की और जाकर सिंह से निवेदन किया कि आप व्यर्थ मे ही इतने पशुओ की हत्या न किया करे। हम स्वयं आपकी सेवा मे एक पशु नित्य भेज दिया करेंगे।

उसी दिन से नियमानुसार एक-एक पशु नित्य सिह के पास उसके भोजन के लिए जाने लगा। कुछ समय बाद किसी बूढ़े खरगोश की बारी आई। वह सोचने लगा—यदि मै सिंह से

अपनी रक्षा की प्रार्थना करूँ तो वह स्वीकार करने वाला नही। फिर उससे प्रार्थना करना ही व्यर्थ है।

खरगोश निर्धारित समय से बहुत देर बाद पहुँचा। इतनी देर बाद, और वह भी छोटे से बूढे खरगोश को आता देखकर सिंह जलभुनकर खाक हो गया।

सिंह : दुष्ट! तू इतनी देर से क्यों आया?

खरगोश : महाराज क्षमा करें। इसमे मेरा कोई भी अपराध नही।

सिंह : तो इतनी देर से आने का कारण?

खरगोश : महाराज, रास्ते मे मुझे एक और सिंह मिल गया था। कहने लगा—तू किसके पास और क्यो जा रहा है? मैंने आपका नाम बताकर कहा—वह हमारे राजा है। मै उनके भोजन के लिए जा रहा हूँ। फिर क्या था? उसने मुझको बहुत से अपशब्द कहे और कहा कि कहाँ है वह तुम्हारा राजा? उसे बुलाकर लाओ; मै उसे अभी पराजित करके स्वयं राजा बनूँगा।

इतना सुनते ही सिंह की आँखे अगारे बरसाने लगी। वह बोला चल, पहले मै वही चलता हूँ। उसको मार कर ही मै तुझे खाऊँगा।

सिंह खरगोश के साथ-साथ हो लिया। कुछ दूर एक गहरे कुएँ पर पहुँचकर खरगोश ने सिंह से कहा :

महाराज, वह इसी मे रहता है। आप उसे स्वय देख ले। उस गहरे कुंए में अपनी छाया देखकर सिंह क्रोध मे भर कर बहुत जोर से गरजा। कुएँ मे से भी उसकी प्रतिध्वनि निकली। सिंह ने उसे अपने प्रतिपक्षी का गर्जन समझा।

और वह उसे मारने को कुँए में कूद पड़ा और स्वयं मर गया।

कौआ : इसीलिए तो मै कहता हूँ कि जिसके पास बुद्धि-बल है वही बलवान् है।

× × × ×

काकी : यह तो मैने सुन लिया। पर यह बताओ कि अब क्या करना चाहिए ?

कौआ : पास के सरोवर पर एक राजपुत्र नित्यप्रति स्नान करने आता है। स्नान से पूर्व वह तालाब के किनारे पड़ी शिला पर वस्त्र एवं अलंकार आदि उतार कर रख देता है। तुम वहाँ से उसका सुवर्णहार अपनी चोंच में उठा लाओ और इस सर्प के खोखले में डाल दो। यह सुवर्णहार ही सर्प की जान ले लेगा। अगले दिन प्रातःकाल काकी ने यही किया। हार के पीछे भागते-भागते रक्षक लोग जब खोखले के पास आए तो वहाँ सर्प को देखकर उन्होंने उसे मार डाला।

दमनक : इसीलिए मै कहता हूँ जो कार्य उपायों द्वारा हो सकता है वह कार्य केवल पराक्रम से नही हो सकता। तुम विश्वास करो, मै बुद्धिबल से ही संजीवक और पिगलक की मित्रता नष्ट कर दूँगा।

तब दमनक पिंगलक के पास गया। प्रणाम करके बोला : महाराज क्षमा करें आज मै बिना बुलाए ही आप से कुछ निवेदन करने आया हूँ।

पिगलक : कहो भी पुत्र ! क्या कहना चाहते हो ?

दमनक : महाराज, आपको हो सकता है अचानक विश्वास न हो, पर जो कुछ मै कहता हूँ वह सत्य कहता हूँ।

पिंगलक : मन्त्रीपुत्र, मैं आज से नहीं वर्षो से तुम्हारा

विश्वास करता आया हूँ। फिर आज तुम्हे कैसे यह शका हुई?

दमनक : महाराज, मुझपर आपका विशेष अनुग्रह है। तभी तो मै सब सत्य-सत्य आपको बताता हूँ। बात यह है कि आपने यह ठीक नहीं किया कि सब मन्त्रियों के हाथ से कार्य छीन लिए और केवल संजीवक को उनका अधिष्ठाता बना दिया। आज उसी का यह फल है कि संजीवक अब आप को इस वन का राजा नही देख सकता। वह आपकी हत्या का षड्यन्त्र रच रहा है।

पिंगलक वह मुझे मारना चाहता है!

दमनक : महाराज केवल चाहता ही नहीं, उसने इसका प्रबन्ध भी कर लिया है।

इतना सुनना था कि पिंगलक भयभीत होकर सोचने लगा—अब क्या किया जाये? संजीवक बहुत बलशाली है। उससे युद्ध करना कोई आसान काम नही।

पिंगलक को चिन्ताग्रस्त देखकर दमनक बोला महाराज, आप विशेष चिन्ता न करे। दमनक के रहते आपका कोई बाल भी बाँका नही कर सकता।

पिंगलक तो क्या किया जाये। सजीवक को वन से निकाल दिया जाये?

दमनक : यह तो बड़ी भारी भूल होगी। वह बाहर जाकर फिर हमे परास्त कर सकता है।

पिंगलक . इन सब बातों से पहले हमे सोचना चाहिए कि वह हमारा बिगाड़ क्या सकता है?

दमनक : किसी के सहायक एव साथियों को बिना जाने यह निश्चय हो ही नहीं सकता। आपको यह सुनकर महान्

आश्चर्य होगा कि एक टिट्टिभ ने महासागर को व्याकुल कर दिया था।

पिगलक : कैसे ?

दमनक : सुनिए...

१०

संघ की शक्ति

अङ्गाङ्गिभावमज्ञात्वा कथं सामर्थ्य निर्णयः

किसी के सहायकों को बिना जाने उसके बल का अनुमान किस तरह लगाया जा सकता है ?

समुद्र के दक्षिणी तट पर टिटीहरी का एक जोड़ा रहता था। समय पाकर टिटीहरी का प्रसव काल निकट आ गया। तब, टिटीहरी टिटिभ से बोली : स्वामी, यह स्थान प्रसव के योग्य नही है। कही समुद्र की लहरों मे हमारे बच्चे बह न जायें?

टिट्टिभ : तुम इसकी चिन्ता क्यों करती हो ? जब तक मै हूँ कोई तुम्हारे पुत्रों को छू नही सकता। मुझे समुद्र से निर्बल क्यों समझती हो ?

टिट्टिभ की बात सुनकर टिटीहरी ठहाका मारकर हँसी और व्यग्य से बोली : क्या कहने आपके ! एक समुद्र क्या सातों समुद्र भी मिलकर आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकते !

कुछ समय पश्चात् गम्भीर होकर टिटीहरी फिर बोली :

स्वामी, आप में और समुद्र मे कितना अन्तर है ? कभी

भी अपने से अधिक बलवान् से झगड़ा नहीं करना चाहिए। शास्त्रों में कहा है कि अयोग्य कार्य का प्रारम्भ, बन्धुओं के साथ शत्रुता, बलवान् से वैर और नारी पर विश्वास, ये चारों मृत्यु के द्वार हैं।

टिटीहरी ने कई प्रकार से टिट्टिभ को समझाया पर वह ज़िद्दी बिल्कुल नही माना और अहंकारपूर्वक बोला: तुम चिन्ता न करो। अपने स्थान को छोडकर मै कही भी नही जाऊँगा। समुद्र जब लड़ने आयेगा तब मैं उससे स्वयं निबट लूंगा।

टिट्टिभ-दम्पति की बाते सुनकर समुद्र को टिट्टिभ का बल जानने की उत्कण्ठा हुई। उसने प्रसव के पश्चात् टिटीहरी के अण्डे छीन लिए। अण्डो के छिन जाने से टिटीहरी को बहुत दुःख हुआ। वह रो-रोकर विलाप करने लगी। वह बोली:

स्वामी, अब मै क्या करूँ? मैने पहले ही कहा था कि आप इस स्थान को छोड़ दें।

पत्नी को आश्वासन देते हुए टिट्टिभ ने कहा: तुम रोओ मत, मै तुम्हारे अण्डे अवश्य वापस ला दूंगा।"

इस तरह पत्नी को समझा-बुझाकर टिट्टिभ ने अपने साथी पक्षियों को एकत्रित किया और उनको साथ लेकर गरुड़देव के पास पहुँचा। सब पक्षियों ने मिलकर गरुड़देव से निवेदन किया और विलाप करते हुए टिट्टिभ बोला:

महाराज, समुद्र ने निरपराध ही मुझे दण्ड दिया। मेरे अंडों को बहाकर ले गया।

अपने परिवार का दुःख गरुड़ से देखा न गया। वह भगवान् विष्णु के पास गए और टिट्टिभ के अंडे दिलाने की प्रार्थना

की। विष्णु भगवान् ने भी समुद्र को वुला भेजा। वेचारे समुद्र ने विष्णु जी की आज्ञा पाते ही अंडे वापस कर दिए। टिटीहरी अपने अडों को पाकर खिल उठी।

× × × ×

दमनक : महाराज, इसीलिए मैं कहता हूँ कि जव तक संजीवक के सहायको का पता न चले, तव तक उसके वल का अनुमान कैसे लगाया जा सकता है !

पिंगलक : मै तुम्हारी वाते तो मानता हूँ। पर यह कैसे जाना जाये कि वह मुझ से द्वेष करता है।

दमनक : जिस समय वह आपके सामने अपने पैंने सीगो को उठाकर युद्ध के लिये आयेगा, उस समय इस वात का भी पता चल जायेगा।

दमनक उठा और वन की ओर चल पडा। कुछ दूर चलने पर उसे संजीवक घास चरता हुआ दिखाई दिया। दमनक भी अपने को कुछ चिन्तित-सा दिखाने हुए चलने लगा। उसको उदास देखकर संजीवक ने पूछा :

मित्र, आज उदास क्यो दिखाई दे रहे रहो ? कुशल तो है न ?

दमनक : मित्र, मै तो वड़ी भारा दुविधा मे पड़ा हुआ हूँ। यदि कुछ कहता हूँ तो राजा से विश्वासघात करता हूँ। यदि नही कहता तो वन्धु के साथ अन्याय करता हूँ। ठीक वैसे ही जैसे कि डूवता हुआ आदमी सर्प का सहारा पाकर उसे छोड़ना भी नही चाहता और पकड़ भी नही सकता।

संजीवक : मित्र फिर भी सव कुछ विस्तार सहित कहो।

दमनक · यह सच है कि राजा के विचार गुप्त रखने चाहिएँ। परन्तु, क्योकि तुम मेरे विश्वास पर आए हो, अतएव मै तुमको सकट से छुड़ाऊँगा। सुनो—राजा पिंगलक एक दिन एकान्त मे कह रहा था कि मै सजीवक को मारकर अपने बन्धुओं को निमन्त्रण दूगा।

सजीवक यह मै कैसे विश्वास करूँ कि वह मुझे मारना चाहता है ?

दमनक : जब पिंगलक लाल-लाल आँखे दिखाते हुए पूँछ उठाकर तुम्हारी ओर आयेगा, तब स्वयं पता चल जायेगा।

सजीवक से इस प्रकार कहकर दमनक करटक के पास गया और फिर उसे लेकर सिह के पास जाकर बोला :

महाराज, वह देखिए। संजीवक आपकी ओर हमले के लिये आ रहा है। अतः आप भी युद्ध के लिये तैयार हो जाये। दमनक का इतना कहना था कि पिंगलक की आँखे लाल हो गई। पूँछ क्रोध के कारण अकड़ गई। वह संजीवक की ओर वढ चला। पिंगलक को पूँछ उठाकर युद्ध के लिये प्रस्तुत देख कर संजीवक भी प्रस्तुत हो गया। दोनो के युद्ध में सजीवक मारा गया।

सजीवक की मृत्यु से पिंगलक को बहुत दुःख हुआ। वह उदास होकर सोचने लगा कि मैने यह वड़ा भारी पाप किया। पिंगलक को इस तरह उदास देखकर दमनक उसके पास आया और वोला :

महाराज की जय हो ! आप उदास क्यों है महाराज ? शत्रु को तो जिस भाँति हो मारना ही चाहिये। नीति कहती है कि राज्य की इच्छा करने वाले शत्रु को कभी भी जीवित न

रखे। राजा का कार्य ही दण्ड देना है। यह तो केवल कपटी मित्र ही था। माता, पिता, भाई, पुत्र चाहे कोई भी हो, यदि वह राज्य-सिंहासन की इच्छा करे तो उसे मार डालना चाहिये।

इतने मे वन के अन्य पशु भी एकत्रित हो गये। सवने जय-जयकार करनी प्रारम्भ की। जय-जयकार से पिंगलक अपनी विचारधारा से भटक गया और विजय की मस्ती में घूमने लगा। वह फिर अपने सिंहासन पर आसीन हो गया और दमनक तथा करटक ने पिंगलक की विजय के वहाने अपनी विजय के गीत आलापने प्रारम्भ कर दिये।

॥ द्वितीय खण्ड समाप्त ॥

तृतीय खण्ड

विग्रह

हंसैः सह मयूराणाम् विग्रहे तुल्य विक्रमे ।
विश्वास्य वंचिता हंसाः काकैः स्थित्वारि मन्दिरे ॥

• • • •

हंस और मोर का युद्ध होने पर कौए ने शत्रु के शिविर में घुसकर विश्वासघात किया और उन्हें ठग लिया ।

• • • •

इस खण्ड की कथा-सूची

राजपुत्रों ने पण्डित विष्णुशर्मा को नमस्कार किया और कहा :

गुरुदेव, हम क्षत्रिय है। क्षत्रिय स्वभाव से ही युद्धप्रिय होते है। अतः आज हमारी इच्छा युद्धनीति सुनने की है।

विष्णुशर्मा : अच्छा, तो हम आज आप लोगों को विग्रह प्रकरण सुनाते है।



१

घर का भेदी

विश्वास्य वंचिता हंसाः काकैः स्थित्वारि मन्दिरे।

• • • •

कौए ने हंसों के किले में रहकर उनके ही साथ छल किया और अपने पक्ष को विजय दिलाई।

• • • •

कर्पूरद्वीप में पद्मकेलि नाम का एक तालाब है। वहां किसी समय हिरण्यगर्भ नाम का राजहंस रहता था। द्वीप के पक्षियों ने मिलकर हिरण्यगर्भ को अपना राजा बना लिया। हिरण्यगर्भ बड़ा धर्मात्मा था। उसके शासन में सब पक्षी सानन्द रहते थे।

एक दिन वह कमलों के सिंहासन पर अपने परिवार तथा मन्त्री सारस के साथ बैठा था। परस्पर विनोद-वार्ता चल रही थी कि दीर्घमुख नाम का बगुला कहीं से आया और हिरण्यगर्भ को प्रणाम करके बैठ गया।

हिरण्यगर्भ : दीर्घमुख, तुम देशान्तरों का भ्रमण करके आए हो, कोई नवीन समाचार सुनाओ।

दीर्घमुख : महाराज, एक आवश्यक समाचार सुनाने के लिए ही मै उपस्थित हुआ हूँ। आप ध्यान से सुनें :—

जम्बुद्वीप में विन्ध्याचल नाम का एक पर्वत है। उस पर चित्रकर्ण नाम का एक मयूर राज्य करता है। उसकी राजधानी का नाम है दग्धारण्य। मैं भ्रमण करता हुआ वहीं पहुँच गया। वह स्थान मुझे बहुत रमणीक प्रतीत हुआ। अतः वहीं निश्चिन्त होकर घूमने लगा। मुझे इस तरह घूमते देखकर वहाँ के गुप्तचर मेरे पास आए और मुझ से पूछा :

तुम कौन हो ?

मैने कहा : मै कर्पूरद्वीप के चक्रवर्त्ती राजा हिरण्यगर्भ का सेवक हूँ। देश-विदेश घूमने की इच्छा से मैं यहाँ आया हूँ।

इतना सुनना था कि सब ने मुझे चारों ओर से घेर लिया और प्रश्न करने लगे।

एक ने पूछा : आपके और हमारे देश में आपको कौन-सा देश सुन्दर प्रतीत हुआ, कौन-सा राज्य अधिक भाग्यशाली दिखाई पड़ा।

मै बोला : आप यह क्या कहते है ? आपके देश और हमारे देश में, आपके राजा और हमारे राजा मे पृथ्वी-आकाश का अन्तर है। हमारा देश स्वर्ग है। हमारे देश का राजा हिरण्यगर्भ

दूसरा इन्द्र है। आप लोग इस मरु-भूमि में रहकर क्या करते है। चलिए, हमारे राज्य में चलिए।

इतना सुनना था कि सब क्रोध से पागल हो उठे। किसी ने ठीक कहा है—

पयः पानं भुजंगानां केवलं विष वर्धनम्।

वैसे तो दूध से सब को लाभ ही होता है। पर यदि सर्प को पिलाया जाए तो उसका तो विष ही बढ़ता है। इसी प्रकार किसी मूर्ख को अच्छी बात समझाने से उसको क्रोध ही आता है। जैसे कि बन्दरों को उपदेश देने से पक्षी दुखी हुए।

राजा : कैसे ?

दीर्घमुख : सुनो महाराज !

२

मूर्ख को उपदेश

उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये ।

• • • •

मूर्खों को उपदेश देने से उनका क्रोध बढ़ता ही है, शांत नहीं होता।

• • • •

नर्मदा नदी के तट पर एक बड़ा भारी सेमर का वृक्ष था। उस पर बहुत से पक्षी रहा करते थे।

वर्षा ऋतु में एक दिन मूसलाधार पानी बरसने लगा। सब पक्षी अपने-अपने घोंसलों में बैठ गये। बन्दर भी अपने-अपने झुण्ड बनाकर वृक्षों की छाया की ओर दौड़े। बहुत से बन्दर सेमर के वृक्ष के नीचे आकर बैठ गये।

वर्षा के साथ-साथ वायु भी चलने लगी। शीत के कारण वृक्ष के नीचे बैठे बन्दर कांपने लगे। उन्हें इस भांति आपत्ति-ग्रस्त देखकर सेमर वृक्ष पर रहनेवाले पक्षी उन्हें समझाते हुए बोले :

भाई वानरो ! वर्षा समय की इस सर्दी से तुम शिक्षा लो। तुम हमारी ओर देखो, हमारे तो हाथ भी नहीं हैं। बस केवल

चोंच ही है। हम इसी से सब काम करते हैं । परन्तु फिर भी हमने अपने परिश्रम से यह नीड़ बनाया और आज सुखपूर्वक जीवन बिता रहे हैं । तुम भी क्यों नहीं अपना घर बनाते ?

पक्षियों की बातें सुनते ही वन्दरों की त्यौरियाँ चढ़ गईं। आँखें दिखाते हुए वे क्रोध से बोले :

हमको कष्ट में देखकर तुम लोग हमारा उपहास करते हो । पानी थमते ही हम तुम्हें देख लेंगे ।

कुछ समय बाद वर्षा रुक गई । बन्दर पानी रुकते ही पेड़ पर चढ़ने लगे । वानरों को अपनी ओर आते देखकर सब-के-सब पक्षी अपने-अपने नीड़ों को छोड़कर भाग चले । बन्दरों ने सब के नीड़ नष्ट कर दिये ।

दीर्घ-मुख की कथा सुनकर राजा बोला :

अच्छा, तो उन पक्षियों ने फिर क्या किया ?

दीर्घमुख : तब वह क्रोध से बोले—तुम्हारे हिरण्यगर्भ को किसने राजा बनाया ?

मैंने भी कहा : तुम्हारे चित्रग्रीव को किसने राजा बनाया ? इतना सुनना था कि वे सब मुझ पर टूट पड़े । तब मैंने भी अपना पराक्रम दिखाया ।

हिरण्यगर्भ : तुमने यह ठीक नहीं किया दीर्घमुख ! अपने तथा शत्रु के बल को बिना जाँचे ही जो झगड़ा कर लेता है उसे सदा नीचा देखना पड़ता है । विश्वास न हो तो चीते की खाल ओढ़कर खेत खानेवाले गधे की कहानी सुनाता हूँ ।

३

नक़्ल के लिए भी अक़्ल चाहिए

आत्मनश्च परेषां च यः समीक्ष्य बलाबलम् ।
अन्तरं नैव जानाति सः तिरस्क्रियतेऽरिभिः ॥

• • • •

अपनी और शत्रु की सामर्थ्य को जो नहीं
जानता उसे शत्रुओं से नीचा देखना पड़ता है ।

• • •

हस्तिनापुर में विलास नाम का एक धोबी रहता था। वह बड़ा लोभी था। अपने गधे से काम तो लेता था, पर उसे पेट भर नहीं देता था। इस प्रकार गधा कुछ ही दिनों में इतना निर्बल हो गया कि उससे काम भी नहीं किया जाता था। चलते-चलते मार्ग में ही गिर पड़ता। इस प्रकार धोबी को हानि भी बहुत उठानी पड़ती।

बहुत सोच-विचारकर धोबी कहीं से मरे हुए चीते की खाल ले आया। उस चीते की खाल को उसने गधे को पहना दिया और उसे खेतों में छोड़ दिया। खेत के रखवाले इसे दूर से देखते ही डर से उसे चीता समझकर उसके पास न फटकते।

गधा मजे से खेतों में चरता फिरता ।

धीरे-धीरे यह बात सारे गाँव में फैल गई । कई किसानों ने तो खेतों पर जाना भी छोड़ दिया। इस तरह कुछ ही दिनों में गधा फिर से मोटा-ताजा हो गया ।

एक दिन किसी किसान ने सोचा—यह चीता अब कहाँ से आने लगा । पहले तो यह कभी आता नही था । उसने एक काला कम्बल ओढ़ लिया और हाथ में तीर कमान लेकर झुककर खड़ा हो गया । गधा धीरे-धीरे चरता हुआ उधर निकला । उसने दूर से ही इस किसान को देखा । जरूर यह भी कोई गधा है, यह सोचकर गधा अपने स्वर में चिल्लाता हुआ किसान की ओर दौड़ा । तब तो किसान ने खेल-ही-खेल में उसका काम तमाम कर दिया ।

इसलिए मै कहता हूँ कि अपने और दूसरे के बल को अवश्य देख ले ।

× × × ×

दीर्घकर्ण : इसके बाद वे बोले : मूर्ख बगुले ! तू हमारे राज्य में ही विचर रहा है और हमारी ही बुराई करता है ? यह कहकर वे मुझे अपनी चोचों से मारने लगे और बोले : बगुले ! सुन, तेरा राजा भी तो बहुत कोमल है ? वह अपनी ही रक्षा नही कर सकता फिर राज्य की क्या रक्षा करेगा । तू तो मूर्ख है ! यदि किसी वृक्ष के नीचे ही रहना है तो कोई बड़ा भारी वृक्ष खोजना चाहिए । क्योंकि यदि भाग्यवश वह फल न दे तो क्या ? उसकी छाया तो कोई नहीं छीन लेता ? किस राजहीन के राज्य में तू रहता है ? सदा किसी पराक्रमी राजा के आश्रय में रहना चाहिये । क्योंकि सिंह की अनुकम्पा

से प्रायः बकरी भी वन में निश्चिन्त घूमती है। और फिर बड़े आदमियों का तो नाम भी बड़ा होता है। देखो चन्द्रमा के नाम-मात्र से खरगोशों ने हाथी से अपनी रक्षा की।

मैंने पूछा : कैसे ?

एक पक्षी बोला : सुनो !

४

बड़े का नाम, छोटे का काम

व्यपदेशेऽपि सिद्धिःस्यादतिशक्ते नराधिप।

• • • •

शक्तिमान् राजा के नाम से ही दुष्कर कार्य भी सिद्ध हो जाता है।

• • • •

एक बार वर्षा न होने के कारण सुदीर्घ नाम का वन सूख-सा गया। वन के निवासी बिलखने लगे। छोटे-छोटे तालाव तो सूखकर मैदान हो गये। प्यासे पशुओं और पक्षियों के झुण्ड-के-झुण्ड इधर-उधर प्यास से भागते दिखाई पड़ते। वन में रहनेवाले हाथी भी बेचैन हो गये और एक झुण्ड बनाकर अपने राजा विशालकर्ण के पास गये और बोले :

महाराज ! हम प्यास से मरे जा रहे है। नहाने के लिए जल नही मिलता। विना नहाये तो हमारा जीवन ही बीतना कठिन हो रहा है।

विशालकर्ण भी चिन्तित हो गया। उसने बड़े प्रयत्न से उन्हें शोर मचाने से रोका। और बोला :

आप लोग चिन्ता न करें। मै इस विषय में पहले से ही

चिन्तित हूँ। आप लोग मेरे साथ चले। मैं आप लोगों को पास ही एक सरोवर दिखाता हूँ। वह इस वन मे सब से बड़ा सरोवर है। उसका जल कभी भी समाप्त नही हो सकता।

इतना कहकर विशालकर्ण उन सबको एक तालाब पर ले गया। उस दिन से सारे वन के हाथी उसी तालाब पर जाने लगे।

तालाब के किनारे खरगोशों का एक दल रहता था। हाथियों के आने-जाने से कई खरगोश नित्य उनके पैरों के नीचे आकर मर जाया करते। हाथियो ने इसकी कभी भी चिन्ता न की। पर खरगोश भला कब चुप रह सकते थे। उन्होने एक सभा की और अपने परिवार की रक्षा का उपाय सोचने लगे।

उसी समय विजय नाम का एक बूढा खरगोश उठा और बोला :

भाइयो, आप दु:ख न करें। मै प्रतिज्ञा करता हूँ कि इन हाथियो का तालाब पर आना ही बन्द कर दूंगा।

इस प्रकार प्रतिज्ञा करके वह विशालकर्ण की ओर चला और एक ऊँची,चट्टान पर बैठकर विशालकर्ण हाथी से बोला :

राजन्, मै विजय नाम का खरगोश हूँ। भगवान् चन्द्रमा का सेवक हूँ। उन्होंने मुझे अपना दूत बनाकर आपके पास भेजा है।

भगवान् चन्द्रमा का नाम सुनते ही विशालकर्ण के आश्चर्य की सीमा न रही। वह बोला :

आज चन्द्र भगवान् को मुझ से कौन-सा काम आ पड़ा? चन्द्र भगवान् ने मुझे क्या आज्ञा दी है?

विजय : राजन्! मैं दूत हूँ। मै कभी भी असत्य नही

बोलूँगा। क्योंकि मुझे मृत्यु का भय तो है ही नहीं। भगवान् चन्द्र के वचनों को मैं आपके सामने दुहराता हूँ। उन्होंने कहा है :

तुमने चन्द्रसरोवर के रक्षक खरगोशों को निकालकर अच्छा नही किया। क्या तुम्हें यह नहीं मालूम कि मैं खरगोशों की रक्षा करता हूँ। मूर्ख देख, खरगोशों की रक्षा के कारण ही तो मेरा नाम शशांक पड़ा है। मेरी आज्ञा है कि तुम इस सरोवर पर जाना वन्द कर दो क्योंकि इस भांति खरगोशों का नाश होता है।

भगवान् चन्द्र की यह आज्ञा सुनकर हस्तिराज विशालकर्ण भयभीत हो गया। वह चन्द्रमा की ओर हाथ जोड़कर कहने लगा :

महाराज शशांक मुझे क्षमा करें। मैंने यह सब जान-वूझ कर नही किया। भविष्य में ऐसा अपराध न होगा।

विजय : यदि ऐसा ही है तो तुम मेरे साथ उस सरोवर तक चलो जहाँ भगवान् चन्द्र क्रोध में लाल होकर कांप रहे हैं।

चतुर खरगोश विशालकर्ण को उसी सरोवर पर ले गया। जल में हिलते हुए चन्द्रमा को दिखाकर वोला :

देखो, भगवान् कितने क्रोधित है। इन्हें प्रणाम करो।

विजय की वात सुनकर विशालकर्ण ने सरोवर में हिलते हुए चन्द्र को प्रणाम किया।

विजय ने भी चन्द्रमा से प्रार्थना की कि इस वार विशालकर्ण को क्षमा किया जावे। यह भविष्य मे ऐसा अपराध कभी भी नही करेगा।

वेचारा विशालकर्ण फिर कभी उस सरोवर की ओर

नही गया

× × × ×

वही पक्षी फिर बोला : इसीलिये मैं कहता हूँ कि किसी महाप्रतापी राजा का आश्रय लेना चाहिए।

तब मैंने कहा : जैसा तुम कहते हो ठीक वैसा ही प्रतापी हमारा राजा राजहंस है।

इतना सुनना था कि उन लोगों ने मुझे पकड लिया और अपने राजा के पास ले जाकर बोले

महाराज, यह कर्पूरद्वीप मे रहनेवाले हिरण्यगर्भ नाम के राजहंस का सेवक है।

उसी समय गृद्ध बोला :

तुम्हारे राजा का मन्त्री कौन है ? मैंने कहा : सर्वज्ञ नाम का चक्रवाक ! एक तोता जो वही बैठा था, बोला : महाराज, कर्पूरद्वीप आदि छोटे-छोटे द्वीप जम्बूद्वीप के ही अन्तर्गत हैं। वहाँ भी आपका ही राज्य है।

मैंने कहा . अगर केवल मुंह चलाने से ही राज्य हो जाता है तो जम्बूद्वीप मे भी हमारा ही राज्य है।

राजा बोला : इसका निर्णय कैसे होगा ?

मैंने कहा . युद्ध ही इसका निर्णय कर सकता है।

राजा : जाओ, अपने स्वामी को युद्ध के लिए तैयार करो।

इतना कहने के बाद राजा ने अपने प्रिय सेवक तोते को अपना दूत बनाकर मेरे साथ भेजना चाहा। पर तोता बोला :

महाराज, मै इस दुष्ट के साथ कभी भी नहीं जाऊँगा। क्योंकि नीति कहती है कि कभी भी दुष्ट का संग नही करना

चाहिए। अन्यथा वही हाल होता है जो कौए के साथ चलने और रहने से हंस का और बटेर का हुआ।

राजा : वह कैसे ?

तोता बोला : सुनो महाराज !

५

दुष्ट का साथ न दो

न स्थातव्यं उ गन्तव्यं दुर्जनेन
समं क्वचित् ।

• • • •

दुष्ट के साथ न तो ठहरना चाहिए
और न कभी उसके साथ कहीं जाना
ही चाहिए ।

• • • •

उज्जयनी नगर के मार्ग में एक पीपल का वृक्ष था । उस पर एक कौआ और एक हंस रहते थे । वृक्ष की छाया इतनी विशाल थी कि पथिक उसके नीचे विश्राम किया करते थे ।

एक दिन एक शिकारी उसी मार्ग से जा रहा था । ग्रीष्म ऋतु थी । मार्ग तय करना कठिन हो रहा था । शिकारी उस वृक्ष की छाया के नीचे पहुँचा और अपना धनुष-बाण एक ओर रखकर विश्राम करने लगा । उसे नींद आ गई और वह सो गया । अचानक निद्रा मे उसका मुंह खुल गया । धीरे-धीरे वृक्ष की छाया का रुख भी बदला और सूर्य की गर्म किरणें उसके मुंह पर पड़ने लगी । शिकारी की इस अवस्था पर हंस को दया आई । उसने अपने पंख फैला लिए और इस भांति वृक्ष की शाखा पर बैठ गया कि शिकारी के मुंह पर छाया हो गई ।

दुष्ट कौआ भला कब यह सब देख सकता था ? वह अपने स्थान से उड़ा और ठीक शिकारी के मुँह के ऊपर जाकर उसने विष्टा कर दी । स्वयं वहाँ से उड़ गया । इस कुकृत्य के कारण शिकारी की नींद टूट गई । पर हंस अपने स्थान से न उठा । वह सोचने लगा : मै तो शिकारी के साथ उपकार कर रहा था, उसका अपकारी तो कौआ है । अतः वह मुझे क्यों मारने लगा । हंस इस प्रकार सोच ही रहा था कि शिकारी ने मुँह उठाकर ऊपर देखा । हंस को ठीक अपने मुँह पर बैठा देखकर उसने उसको ही अपना अपराधी समझा । क्रोध में आकर शिकारी ने एक ही तीर से हंस को मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया ।

इतना कहकर तोता बोला : महाराज, अब कौए और बटेर की कहानी सुनें !

६

करे कोई और भरे कोई

एक वार भगवान् गरुड़ यात्रा करते हुए समुद्र तट पर आ रहे थे। उनके दर्शनार्थ स्थान-स्थान से पक्षियो के समूह समुद्र तट की ओर चले। किसी वन में एक कौआ और वटेर परस्पर मित्र की भांति रहते थे। उन्होंने भी समुद्र की ओर प्रयाण करने का निश्चय किया।

दोनों समुद्र की ओर चल दिये। रास्ते में कौए ने देखा कि कोई ग्वालिन अपने सिर पर दही की हांड़ी रखे हुए जा रही थी। फिर क्या था? कौए ने तेजी से पंखों को चलाना प्रारम्भ किया। भोली वटेर भी उसका साथ निभाने की इच्छा से पीछे-पीछे उड़ने लगी। ग्वालिन के पास पहुँचकर कौआ उसकी हांड़ी पर वैठ गया। वटेर भी वैठ गई। पर उसने कौए की भांति चुराकर दही खाना उचित न समझा। थोड़े समय वाद ग्वालिन का घर आ गया। उसने हांड़ी नीचे उतारी। कौए और वटेर को हांड़ी पर बैठा देखकर उसने उन्हे उड़ाने के लिए हाथ उठाया। कौआ तो उसी समय उड़ गया, पर अपने को निरपराव समझ कर वटेर धीरे-धीरे ही चलती रही। फलस्वरूप उसे ग्वालिन ने पकड़ लिया और मार डाला।

× × × ×

तोता बोला : इसीलिये मै कहता हूँ कि दुष्ट बगुले के साथ नही जाऊँगा ।

दीर्घमुख : तत्पश्चात् वहाँ के राजा ने मेरा यथोचित सत्कार करके मुझे विदा कर दिया और मेरे पीछे ही तोते को भेज दिया । वह भी मेरे पीछे-पीछे आ रहा होगा ।

दीर्घमुख की बात सुनकर राजहंस का मन्त्री चक्रवाक हँसकर बोला :

महाराज, इसने दूसरे के राज्य में जाकर भी राजकार्य ही किया है, पर उसमें मूर्खता के अतिरिक्त और है ही क्या ?

हिरण्यगर्भ : अब बीती बातों में क्या रखा है ? इस समय तो प्रस्तुत विषय पर ही विचार-विमर्श करना चाहिये ।

चक्रवाक : महाराज, नीति कहती है कि आप अपने गुप्तचर भेजें जो कि शत्रु का समस्त समाचार हमें भेजते रहें । पर यह गुप्तचर ऐसे होने चाहिएं जो जल और थल दोनों पर ही चल सकें । मेरे विचार से इस बगुले को ही भेजना चाहिए ।

इतने में ही द्वारपाल ने आकर निवेदन किया :

द्वारपाल : महाराज, जम्बुद्वीप से कोई तोता आया है, आप से मिलना चाहता है ।

मन्त्री : उसे अतिथिशाला में ठहरा दो ।

हिरण्यगर्भ : तोते के आने से पहले ही हमें अपने क़िले का निर्माण कर लेना चाहिये । सारस को इस कार्य के लिए नियुक्त करो ।

मन्त्री : महाराज, आप चिन्ता न करें । यह जलाशय ही हमारा क़िला है । इसमें केवल भोजन की कमी है ।

द्वारपाल ने फिर सिर झुकाकर प्रणाम करते हुए कहा :

महाराज, सिंहलद्वीप से मेघवर्ण नाम का कौआ उपस्थित हुआ है।

हिरण्यगर्भ : कौआ चतुर एवं नीतिज्ञ होता है। उसका इस समय आना उचित ही हुआ।

मन्त्री : ऐसा न कहें महाराज, कौआ पर-पक्ष का है। अपने पक्ष को छोड़कर पर-पक्ष से मिलनेवाले की नीलरंग वाले गीदड़ जैसी दशा होती है।

राजा बोला : कैसे ?

चक्रवाक : सुनिये महाराज !

७

धोबी का कुत्ता, घर का न घाट का

आत्मपक्षं परित्यज्य परपक्षेषु यो रतः
स परैर्हन्यते मूढो :.....

० ० ० ०

अपने पक्ष को छोड़कर जो दूसरे दल का हित
सोचे उसे दूसरे दल के लोग भी मार देते हैं।

० ० ० ०

एक दिन कर्वूर नाम का गीदड़ गाँव की ओर निकल पड़ा। रात का समय था और तिसपर अमावस्या का अन्धकार। कुछ दिखाई नही पड़ रहा था। चलते-चलते वह किसी धोवी के नील भरे वर्तन में गिर पड़ा। उसने वार-वार प्रयत्न किया, पर वह उससे निकल ही नहीं पाया। रात वीतती जा रही थी। गीदड़ को लगता जैसे उसकी मुसीवत पास आ रही हो। धोवी आयेगा और पीटेगा। यह विचार उसका खून सुखा रहा था। उससे जो कुछ वन पड़ा उसने किया। पर फिर भी निकल न सका।

धीरे-धीरे तारे ऊषा की लाली में घुलने लग। तभी अचानक गीदड़ को कुछ सूझी। वह उसी समय इस तरह लेट गया मानो मर गया हो। धोवी आया, गीदड़ को मरा हुआ देखकर

उसने उसे उठाया और कुछ दूर पर फेंक आया। गीदड़ भी सिर पर पैर रखकर भाग खड़ा हुआ।

भागते-भागते वह बहुत दूर निकल गया। वृक्ष के नीचे बैठकर वह विश्राम करने लगा। वह सोचने लगा—अब मेरा शरीर नीला तो हो ही गया है; क्यों न इससे कोई लाभ उठाऊँ। कुछ समय इसी प्रकार सोचकर वह उठा और अकड़कर गीदड़ों के पास जाकर बोला :

हे वनवासियो, मेरी ओर देखो। वन-देवता ने समस्त बूटियों का रस निकालकर मुझे स्नान कराया है। अतएव मेरा सुन्दर शरीर अब नीला पड़ गया है। वन-देवता ने मुझे आशीष देते हुए इस वन का राज्य भी सौंप दिया है। आप लोगों के लिए मेरी आज्ञा है कि आज से आप लोग मेरे शासन में रहें और अपने को मेरी प्रजा समझें।

वन के समस्त गीदड़ों ने तथा व्याघ्र, चीता, शेर आदि सब पशुओं ने गीदड़ को हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उसे दैवी शक्ति का प्रतिनिधि समझकर अपना राजा स्वीकार कर लिया।

एक समय राजा कर्बुर की राजसभा आयोजित थी। वन के सिंहादि सब पशु उसमे उपस्थित थे। कर्बुर अहङ्कार मे चूर हो गया और उसने अपने साथी गीदड़ों का तिरस्कार कर दिया। गीदड़ भला यह कब सह सकते थे। उन्होने मिलकर एक और सभा का आयोजन किया। सभा में एक गीदड़ ने कहा :

भाइयो, मैं विश्वास दिलाता हूँ कि इसे सिंह आदि बलवान् पशुओं के हाथ अवश्य ही मरवा दूंगा।

इतना कहकर सायंकाल के समय अन्य गीदड़ों को लेकर वह गीदड़ कर्वुर की ओर चला। कर्वुर सिंह आदि पशुओं के साथ कुछ मन्त्रणा कर रहा था। इन गीदड़ों ने जाकर उसे चारों और से घेर लिया और ज़ोर-जोर से रोना प्रारम्भ कर दिया। गीदड़ों का शब्द सुनकर कर्बुर से भी न रहा गया। स्वभावतः वह भी गीदड़ों के साथ-साथ शब्द करने लगा।

कर्वुर का स्वर सुनते ही सिंह आदि पशुओं को भी यह पता चला गया कि यह साधारण गीदड़ है। अतः उन्होंने चिढ़कर उसे मार डाला।

× × ×

मन्त्री बोला : इसीलिए मैं कहता हूँ कि अपना पक्ष छोड़कर आए हुए व्यक्ति का क्या विश्वास ?

राजा : फिर भी दूर से आए हुए अतिथि का स्वागत तो करना ही चाहिए। इसे अपने साथ रखना है अथवा नहीं, इस विषय पर बाद में विचार किया जायगा।

सारस ने आकर सूचना दी : महाराज, दुर्ग भली-भांति तैयार हो गया।

राजा : तो तोते को हमारे सामने उपस्थित किया जाए।

राजदूत तोता दरबार में लाया गया। उसे हिरण्यगर्भ के आसन से दूर ही आसन दिया गया। वह अपने आसन पर अकड़कर बैठ गया।

दूत : हे हिरण्यगर्भ ! जम्बुद्वीप से महाराजाधिराज श्री चित्रवर्ण तुम्हें आज्ञा देते है कि यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो शीघ्र ही जम्बुद्वीप आकर हमारे चरणों में शीश झुकाओ। यदि तुम ऐसा नहीं कर सकते तो शीघ्र ही कर्पूर-

द्वीप छोड़कर कहीं और चले जाओ। क्योंकि कर्पूरद्वीप भी जम्बुद्वीप के शासन के अन्तर्गत है।

दूत के वचन सुनते ही हिरण्यगर्भ के क्रोध की सीमा न रही। वह क्रोध मे भर कर बोला :

है कोई जो इस दुष्ट की गर्दन पकड़ कर इसे सभा-भवन से बाहर निकाल दे ?

यह सुनते ही मेघवर्ण नाम का कौआ खड़ा होकर सगर्व बोला :

महाराज, यदि आज्ञा हो तो मैं इस दुष्ट तोते को अभी यहीं पर मार डालूँ।

सभा की ऐसी गम्भीर परिस्थिति देखकर मन्त्री चक्रवाक राजा और मेघवर्ण को शान्त करते हुए बोला :

दूत को नही मारना चाहिए। क्योंकि वह अपनी ओर से कुछ भी नही कहता। वह जो कुछ भी कहता है राजा के वचन ही कहता है। फिर इनका तो कार्य भी यही है। वह तो चाहे शस्त्र ही उठे हुए हो कभी भी असत्य नही बोलेगा।

इस प्रकार चक्रवाक ने राजा और कौए को समझाया। दोनों के शान्त होने पर राजदूत तोते को प्रसन्न करके वापस जम्बुद्वीप भेज दिया गया।

चित्रवर्ण ने तोते से पूछा : दूत, कर्पूरद्वीप कैसा देश है ? वहाँ का राजा कैसा है ?

तोता : महाराज, कर्पूरद्वीप के विषय में अब आप क्या पूछते हो। वास्तव में कर्पूरद्वीप दूसरा स्वर्ग है और हिरण्यगर्भ दूसरा इन्द्र ! अब आप शीघ्र ही युद्ध की तैयारी करें और कर्पूरद्वीप को अपनी राजधानी बनाएँ।

चित्रवर्ण ने अपने सेनापति को सेना सुसज्जित करने की आज्ञा दी और कोपाध्यक्ष को आज्ञा दी की वह वहुत-सा कोष तैयार करे जो कि युद्ध में साथ-साथ चलेगा। जिससे कि समय-समय पर सेना को पुरस्कार आदि देकर प्रसन्न किया जा सके। क्योकि कहा—

न नरस्य नरो दासः दासस्यत्वर्थस्य भूपते

कोई भी किसी का सेवक नहीं होता। सब पैसे की सेवा करते हैं।

शुभ मुहूर्त में राजा चित्रवर्ण की सेना ने कर्पूरद्वीप की ओर प्रस्थान किया।

× × ×

हिरण्यगर्भ के दरवार में एक दिन एक दूत ने आकर सूचना दी :

महाराज, राजा चित्रवर्ण इस समय अपनी सेना को साथ ले युद्ध करने के लिए मलयगिरि की तराई में ठहरा हुआ है। उसके मन्त्री को यह कहते भी सुना गया है कि उन्होंने हमारे किले में कोई गुप्तचर भी लगा दिया है। अतः किले की जहाँ तक हो सके देख-रेख करनी चाहिए।

मन्त्री : महाराज, यह गुप्तचर कौआ ही हो सकता है।

राजा : हो सकता है कि तुम्हारा अनुमान असत्य हो। क्योंकि यदि वह शत्रु का पक्षपाती है तो तोते के साथ क्यों लड़ने लगा था ? अव भी वह युद्ध का नाम सुनते ही लड़ने को कमर कसे वैठा रहता है।

मन्त्री : फिर भी वाहर से आए व्यक्ति पर शंका

होती ही है।

राजा : कभी-कभी बाहर से आये हुए भी उपकारी हो जाते हैं। सुनो, मैं तुम्हे एक कथा सुनाता हूँ!

८

कर्त्तव्य-पालन

परोऽपि हितवान्वन्धुर्बन्धुरप्यहितः परः ।

० ० ० ०

भलाई करने वाला पराया भी भाई समान होता है । और भाई भी यदि अहित चाहे तो शत्रु ही है ।

० ० ० ०

एक दिन राजा शूद्रक की राजसभा में वीरवर नाम का एक राजकुमार उपस्थित हुआ । राजा ने उससे सप्रेम पूछा :

कहो राजकुमार, तुम कौन-से देश से, और राजसभा में किस कारण से पधारे ?

राजकुमार . महाराज, मेरा नाम वीरवर है । मै आपकी कुछ सेवा करना चाहता हूँ । अतः कृपया आप मुझे अपना सेवक स्वीकार करे ।

राजा : तुम कितना वेतन लोगे राजकुमार !

वीरवर : पाँच सौ सुवर्ण मुद्रा प्रतिदिन लूँगा ।

राजा : तुम्हारी सेवा की सामग्री क्या है ?

वीरवर : महाराज, केवल दो बाहू और एक तलवार ।

राजा : यह सम्भव नही है ।

राजकुमार वीरवर सभा से चल दिया। शूद्रक के मन्त्रियों ने वीरवर का वेतन और उसकी सामग्री देखकर राजा को सलाह दी कि महाराज इस राजकुमार को चार दिन का वेतन देकर नियुक्त कर लेना चाहिए। देखते हैं कि यह किस कार्य का व्यक्ति है। मन्त्रियों की बात सुनकर राजा ने वीरवर को वापस बुला लिया और उसे चार दिन का वेतन देकर अपनी सेवक-वृत्ति पर नियुक्त कर दिया।

राजा ने वीरवर के पीछे गुप्तचर नियुक्त कर दिये। जिन्होंने वीरवर का व्यय का ब्यौरा बतलाते हुए कहा : महाराज, वीरवर ने अपने वेतन का आधा भाग देव-पूजन तथा यज्ञादि मे दान कर दिया। शेष का आधा देश के निर्धनो की सहायता मे लगा दिया। बाकी का उसने उपभोग किया। और फिर आपके द्वार पर खड़ा हो गया। उसके हाथ में तलवार थी और कुछ भी न था।

राजा शूद्रक ने देखा वीरवर सदा नंगी तलवार लिए उसके साथ रहता है। उसके भवन के अन्दर चले जाने पर स्वयं द्वार पर ही खड़ा रहता है।

एक दिन कृष्णपक्ष की चौदस की रात्रि को राजा शूद्रक अपने रनिवास में सो रहा था। अचानक किसी के रोने का स्वर सुनकर उसकी निद्रा भग हो गई। वह उठकर बैठ गया। अब उसे रुदन का स्वर स्पष्ट सुनाई दे रहा था। वह किसी नारी का करुण-क्रन्दन था।

राजा ने पुकारा : द्वार पर कौन है ?

वीरवर : मैं हूँ महाराज, वीरवर !

राजा : जाओ देखो, वह अर्धरात्रि में कौन रो रहा है ?

वीरवर : जैसी महाराज की आज्ञा !

इतना कहकर वीरवर विना सोचे-समझे ही चल दिया। वीरवर के चले जाने के कुछ ही क्षणों के उपरान्त राजा को विचार आया कि मैने इस घोर अन्धकार में वीरवर को अकेले ही भेजकर अच्छा नही किया। भावी को कोई नहीं जानता ? कहीं वीरवर पर कोई मुसीवत न आजाए ? राजा स्वयं उठा और खड्ग हाथ में लेकर वीरवर के पीछे-पीछे चुपचाप चलने लगा। उसने देखा :

उस घने अन्धकार में वहुमूल्य भूपणों से सुसज्जित एक रूपवती युवती को वीरवर ने देखा। वीरवर उसके पास गया और मीठे -मीठे शब्दों से उसे धैर्य दिलाते हुए वोला : देवि तुम कौन हो ? यहाँ अकेली क्यों वैठी हो ? रो क्यों रही हो ?

स्त्री : मै राजा शूद्रक की राज-लक्ष्मी हूँ। वहुत समय तक इसके अधिकार में रही। अव किसी दूसरे राजा के पास जाना चाहती हूँ ।

वीरवर : देवि, प्रत्येक हानि से वचने के उपाय हुआ करते है। आप इस राज्य को छोड़कर जा रही हैं। यह तो इस राज्य की सवसे बड़ी हानि है। क्या इससे वचने का कोई उपाय नहीं ?

लक्ष्मी : हाँ है। पर क्या तुम उस उपाय को सिद्ध कर सकोगे ?

वीरवर : क्यों नहीं ? में जिसका अन्न खाता हूँ उसके लिए क्या नही कर सकता ?

लक्ष्मी : तव तो केवल एक ही उपाय है। तुम अपने पुत्र शक्तिधर को भगवती की वलि दे दो।

वीरवर : यह भी कोई कठिन काम है देवी ? जैसी आपकी आज्ञा।

लक्ष्मी अन्तर्ध्यान हो गई। वीरवर अपने निवास-स्थान की ओर उसी समय चल दिया। शूद्रक राजा भी उसी के पीछे चला। घर पहुँचकर वीरवर ने अपनी पत्नी एवं अपने पुत्र को सोते से जगाया। वीरवर ने आदि से लेकर अन्त तक की सारी सच्ची कहानी दोनों को सुना दी। पिता की बात सुनकर शक्ति-धर प्रसन्न होकर बोला :

पिताजी, मै धन्य हूँ जो अपने राज्य और स्वामी के लिए काम आ रहा हूँ। अब आप विलम्ब न कीजिए। मुझे शीघ्र ही भगवती के मन्दिर में ले चलिए। शास्त्रों मे लिखा है—

धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्।

बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि परोपकार के लिए अपना धन और जीवन दोनों का समर्पण करदे। फिर यह तो अपना ही काम है।

शक्तिधर की माँ बोली, यदि हमने इस समय भी बलि न दी तो इस राज्य का इतना वेतन क्यो ले रहे है ?

पुत्र और पत्नी की बात सुनकर वीरवर बहुत प्रसन्न हुआ। अपने पुत्र के सिर पर हाथ फेरते हुए बोला . पुत्र, मुझे तुमसे ऐसी ही आशा थी। तुमने आज हमारे वंश का मस्तक ऊँचा कर दिया।

वीरवर उन दोनो को साथ लेकर भगवती के मन्दिर मे गया। राजा भी दीवार की आड़ में खड़ा होकर इनका कृत्य देखने लगा। वीरवर बोला :

भगवती ! आप प्रसन्न हो। महाराज शूद्रक की जय हो !

मेरा पुत्र आपकी बलि के लिए उपस्थित है। आप इसे स्वीकार करें। इतना कहकर वीरवर ने उसी तलवार से अपने पुत्र का गला काट दिया।

वीरवर कुछ समय तक शान्त खड़ा रहा। फिर उसने सोचा—बिना पुत्र के मेरा जीवन भी निरर्थक है। अब क्या जीवन में मुझे ऐसा सौभाग्यशाली और पितृभक्त पुत्र प्राप्त हो सकेगा ? फिर इस अपुत्र जीवन से क्या लाभ !

वीरवर ने तभी अपने खड्ग से अपनी हत्या कर ली। सती पत्नी भला फिर कैसे रह सकती थी। उसने भी उसी समय अपने पति के चरण-चिह्नों का अनुकरण किया।

इस भयानक नर-मेध को देखकर राजा के रोंगटे खड़े हो-गये। वह सोचने लगा—

मेरे जैसे तो सहस्रों प्राणी इस संसार में क्रमशः आते-जाते रहते हैं। इस पर राजपुत्र के समान न तो कोई पैदा हुआ है और न हो ही सकेगा। फिर मेरे जीवन से क्या लाभ ? जिसने वीरवर जैसे सेवक को हाथों से खो दिया।

दुःखी होकर राजा ने भी अपना सिर काटने के लिये तल-वार उठाई। परन्तु उसी समय सर्वमंगला देवी ने प्रकट होकर राजा का हाथ पकड़ लिया, और बोली :

राजन्, मै तेरे साहस से अत्यधिक प्रसन्न हूँ। मैं तुम्हे आशी-र्वाद देती हूँ कि तुम्हारी मृत्यु के बाद भी तुम्हारी राज-लक्ष्मी युगों तक अविचल रहेगी।

भगवती को साष्टांग प्रणाम करते हुए राजा बोला : भगवती ! मुझे अपना जीवन अथवा राज्य नही चाहिये। यदि आप प्रसन्न है तो कृपा करके इन तीनों को पुनः जीवित कर देवें।

भगवती ने प्रसन्न होकर सब को जीवित कर दिया।

प्रातःकाल रनिवास से निकलते हुए राजा ने वीरवर से पूछा :

वीरवर, रात्रि मे कोलाहल क्यों हो रहा था ?

वीरवर : महाराज, एक स्त्री रो रही थी । मुझे देखते ही वह न जाने कहाँ चली गई ।

राजा मुस्कराया और सोचने लगा—

कितना महान् व्यक्तित्व है इस राजकुमार का ? यह सत्य है कि यह पराया है पर फिर भी अपने वन्धुओ से सो गुना अच्छा है ।

राजा ने राजसभा मे वीरवर की सारी-की-सारी कहानी कह सुनाई। फिर वीरवर को बुलाकर कर्नाटक का राज्य उसे दे दिया ।

× × × ×

हिरण्यगर्भ आगे बोला · इसोलिये मै कहता हूँ कि हो सकता है कि यह कौआ भी हमारे कल्याण के लिये ही आया हो ।

मन्त्री : महाराज का विचार तो सत्य है पर नीति कहती है—

यदि किसी को पुण्यो के प्रभाव से कभी कोई सुख प्राप्त हुआ तो वैसा ही मुझे भी प्राप्त हो जाए। इस भाति की कल्पना भी नही करनी चाहिये। धन की इच्छा से नाई ने जब ऐसा ही किया तो उसे मृत्यु प्राप्त हुई ।

हिरण्यगर्भ : मै यह कथा सुनना चाहता हूँ ।

मन्त्री : सुनो महाराज !

९

नक़ल का दुष्परिणाम

पुण्याल्लब्धं यदेकेन तन्ममापि भविष्यति।

० ० ० ०

जो कुछ किसी ने पुण्य से प्राप्त किया, वह सब मुझे भी मिल जाय, यह लोभ मनुष्य को दुखी करता है।

० ० ० ०

अयोध्या में चूड़ामणि नाम का एक क्षत्रिय रहा करता था। दुर्भाग्य से वह निर्धन था। अतः उसे सदा धन की ही चिन्ता लगी रहती। एक दिन उसने भगवान् की तपस्या करके धन प्राप्त करने का निश्चय दिया। वह वन में चला गया और आशुतोष भगवान् शंकर की उपासना करने लगा। भोलेनाथ भगवान् थोड़ी-सी ही तपस्या से प्रसन्न हो गए और उन्होने स्वप्न में उससे कहा :

क्षत्रिय, मै तेरी इस कठोर तपस्या से प्रसन्न हूँ। तुम्हें धन की कामना है तो तू कल प्रातःकाल किसी नाई को बुलाकर क्षौर आदि कराके अपने नगर की ओर चल देना। मार्ग मे वट-वृक्ष के नीचे तुझे एक संन्यासी जाता हुआ मिलेगा। तू उसे डण्डे से खूब पीटना।

प्रातःकाल होते ही क्षत्रिय ने एक नाई को बुलाया, क्षौर करवाकर वह उसी मार्ग की ओर चल पड़ा। उसके पीछे नाई भी हो लिया। कुछ ही समय बाद उसी मार्ग से एक भिक्षुक जाता हुआ दिखाई दिया। क्षत्रिय ने उसे पीटना प्रारम्भ किया। वह भिक्षुक पिटते-पिटते मणि-रत्नों से भरा हुआ एक सुवर्ण घट बन गया।

इस दृश्य को देखकर नाई ने विचार किया—धन पाने की तो यह बहुत ही आसान और सुन्दर रीति है। अगले दिन वह भी प्रातःकाल हाथ मे डन्डा लेकर निकल पड़ा। संयोगवश उस दिन भी एक भिक्षुक उस ओर से जा रहा था। नाई ने उसे पीटना प्रारम्भ किया और इतना पीटा कि वह मर गया।

अयोध्या के राजा ने उसे इस अपराध में मृत्यु-दण्ड दे दिया।

× × × ×

हिरण्यगर्भ : अस्तु, छोड़ो इस झगड़े को। इस समय क्या करना चाहिए ?

मन्त्री : मैने अभी-अभी दूत से सुना है कि राजा चित्रवर्ण ने अपने महामन्त्री का तिरस्कार किया। इस अपमान के कारण महामन्त्री उसे त्याग कर वन को चला गया। अब हमें उसे मार्ग में घेर लेना चाहिए। इस भाँति वह दुष्ट शीघ्र ही पराजित हो जायगा।

मन्त्री की मन्त्रणा के अनुसार राजा हिरण्यगर्भ ने अपनी सेना समेत चित्रवर्ण को मार्ग में ही घेर लिया। दोनों पक्षों में भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में राजा चित्रवर्ण के अनेकों सैनिक काम आए। उसके बहुत से सेनापति वीरगति को प्राप्त हुए।

चित्रवर्ण को अन्त में हार मानकर पीछे हटना पड़ा। अपनी इस पराजय से चित्रवर्ण को वड़ा दु.ख हुआ। वह महामन्त्री गृद्ध के पास गया और बोला :

महामन्त्री, युद्ध के समय इस भाँति हमारी उपेक्षा करना तुम्हें उचित नहीं। यदि मैने कभी तुम्हें कुछ कह भी दिया तो आपत्ति के समय उससे रुष्ट नहीं होना चाहिए।

मन्त्री : राजन्, तुम्हें राजकार्य में निपुणता नहीं। मूर्ख राजा भी यदि विद्वानों का आदर करता है तो उसे भी लक्ष्मी प्राप्त होती है। नदी के किनारे रहनेवाला वृक्ष सदा हरा-भरा ही रहता है। आपने अपनी सेना और वल पर घमंड किया और मेरा अपमान किया। अत. आपको यह पराजय प्राप्त हुई।

चित्रवर्ण हाथ जोड़कर मन्त्री से वोला : मन्त्री, यह मेरा ही अपराध है। मै अव आप से प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे अब उचित सलाह दें। मेरे विचार में तो अब वापस अपने देश को ही जाना अच्छा होगा।

मन्त्री : राजन् ! आप घवड़ाएँ नही। सन्निपात के बीमार के सामने वैद्य की कुशलता और शत्रु की सफल नीति को असफल बनाने में मन्त्री की कुशलता होती है। अच्छे समय में तो कौन कार्य-पटु नहीं होता ? अव आप वापस लौटने का विचार न करें। मै प्रतिज्ञा करता हूँ कि आपको शत्रु पर विजय दिलाऊँगा।

राजा : तो अब हम क्या करें ?

मन्त्री : शीघ्र ही राजहंस का किला घेर लो।

× × × ×

चित्रवर्ण और महामन्त्री के इस वार्तालाप को हिरण्यगर्भ के दूत ने सुन लिया और सव ठीक-ठीक आकर राजा से निवेदन किया। हिरण्यगर्भ ने अपने समस्त सैनिकों को क़िले की सुरक्षा की चेतावनी दे दी। उन्हें पर्याप्त मात्रा में पुरस्कार आदि भी वाँटे।

थोड़े समय पश्चात् मेघवर्ण नाम का कौआ हिरण्यगर्भ के पास आया और प्रणाम करके वोला :

महाराज, इस समय शत्रु किले के मुख्य द्वार पर युद्ध के लिए प्रस्तुत है। अतः यदि आपकी आज्ञा हो तो मै वाहर जाकर अपना वल और पौरुष दिखलाऊँ।

मन्त्री : यदि वाहर जाकर ही युद्ध करना था तो फिर किले मे क्यों ठहरे ? तुम नीति नही जानते। जल से निकलकर नाका वलहीन हो जाता है। वन से निकलकर सिंह भी गीदड़ हो जाता है और किले से निकलकर महान्-से-महान् पराक्रमी योद्धा भी हार जाता है।

इस तरह मन्त्री ने मेघवर्ण को वही किले में रोक लिया। हिरण्यगर्भ के सव सैनिक भी किले के द्वार पर जाकर युद्ध करने लगे। थोड़ी देर में जव सव लोग युद्ध में अपनी सुध-वुध खो वैठे तो अचानक कौए ने किले में आग लगा दी। आग लगते ही किले मे से 'किला जीत लिया' का उच्च स्वर सुनाई दिया। समस्त जलचर तो पानी मे घुस गए, पर वेचारा हंस मन्दगति होने के कारण न घुस पाया। उसे चित्रवर्ण के सेनापति कुक्कुट ने आकर सारस समेत घेर लिया। सारस हिरण्यगर्भ से वोला :

महाराज, अव भागना शोभा नही देता। भागने के उपरान्त भी तो एक-न-एक दिन मर ही जाना है। फिर क्यो

न युद्ध में ही लड़ते-लड़ते प्राण त्याग दिये जाएँ।

सेनापति कुक्कुट ने अपने प्रहारों से हिरण्यगर्भ को बहुत घायल कर दिया। तभी सारस ने अपनी लम्बी चोंच से कुक्कुट पर प्रहार किए और अपने पंखों से राजहंस को जल में जोर से ढकेल दिया। तदनन्तर सारस ने बहुत पराक्रम दिखाया। परन्तु अन्त में सब पक्षियों ने मिलकर सारस को मार डाला।

चित्रवर्ण किले की समस्त धनराशि को लेकर जयघोष के साथ अपनी राजधानी को लौट गया।

राजकुमार बोले : सारस कितना योग्य था, जिसने अपने प्राणों की भी चिन्ता न की और स्वामी को बचाया।

विष्णुशर्मा : भगवान् उसे स्वर्ग प्रदान करे।

॥ तृतीय खण्ड समाप्त ॥

चतुर्थ खण्ड

सन्धि

वृत्ते महति संग्रामे राज्ञोः निहित सेनयोः
स्थेयाभ्यां गृध्र चक्राभ्यां वाचः सन्धि कृतः क्षणात् ।

युद्ध में दोनो राजाओं की सेनाओं के नष्ट हो जाने पर गृद्ध और चकवे ने मध्यस्थ होकर हंस और मयूर की सन्धि करा दी ।

इस खण्ड की कथा-सूची

कथा प्रारम्भ होने के साथ राजपुत्रों ने विष्णुशर्मा से निवेदन किया :

गुरुदेव ! हमने विग्रह सुन लिया। हमने सुना है कि राजा लोग परस्पर में सन्धि भी कर लेते है। अतः हमें सन्धि-प्रकरण सुनाएँ।

विष्णुशर्मा : सुनो ! मै तुम्हे उन्ही राजहस और मयूर की सन्धि सुनाता हूँ जिनकी लड़ाई तुमने विग्रह में सुनी है।



१

समबल शत्रु से सन्धि करे

वृत्ते महति संग्रामे राज्ञोर्निहित सेनयोः
स्थेयाभ्यां गृद्ध चक्राभ्यां वाचा सन्धिः कृतः क्षणात्

° ° ° °

युद्ध मे दोनो राजाओ की सेना नष्ट हो जाने पर गृद्ध और चकवे ने मध्यस्थ बनकर हंस और मयूर की सन्धि करा दी।

° ° ° °

दुर्ग पर चित्रवर्ण का अधिकार हो जाने के उपरान्त हिरण्यगर्भ ने अपने मन्त्री से पूछा :

मन्त्रि ! हमारे किले में आग किसने लगा दी ?

मन्त्री : महाराज, मेघवर्ण नाम का कौआ अपने परिवार सहित नही दिखाई देता । अत. प्रतीत होता है कि उसी ने किले में आग लगाई ।

हिरण्यगर्भ : इसमें किसी का भी अपराध नहीं । दैव ही हमारे प्रतिकूल था ।

मन्त्री : राजन्, बुरी दशा प्राप्त करके भाग्य की निन्दा करना मूर्खता है । अपने कर्मो के दोष को कोई भी बुरा नही कहता । एक वार एक कछुए ने भी इसी प्रकार कहा था ।

राजा : वह क्या कथा है ?

मन्त्री : सुनो !

२

मित्रों का कहा मानो

सुहृदां हितकामानां यो वाक्यं नाभिनन्दति।

° ° ° °

जो कल्याण चाहने वाले मित्रों की सलाह नही
सुनते वे नष्ट हो जाते है।

° ° • °

मगध देश में फुल्लोत्पल नाम के तालाब में संकट और विकट नाम के दो हंस रहते थे। इनका कम्बुग्रीव नाम का एक कछुआ मित्र भी उसी सरोवर में रहता था। प्रायः धीवरों के आने की सूचना हंस कछुए को पहुँचा दिया करते। इस भांति कछुआ कठिन समय मे बच जाता था।

एक दिन कई धीवर उसी तालाब के पास से जा रहे थे। पानी में खेलती हुई मछलियों को देखकर वे वहीं रुक गए। मछलियों को मोटा-ताजा देखकर उन्होंने अगले दिन वही आने का निश्चय किया। एक ने वल देते हुए कहा:

कल प्रातःकाल हम अवश्य ही यहाँ की मछलियों और कछुओं को पकड़ेगे।

संकट और विकट ने यही समाचार कछुए और मछलियों को सुना दिया। कछुआ सुनकर वहुत भयभीत हुआ और

रक्षा के उपाय सोचने लगा। वह हंसो से बोला :

मित्रो, तुमने तो धीवरों की बातें अपने कानो से सुनी है। अब तुम्ही कोई उपाय बताओ। मुझे ऐसा प्रतीत होता है मानो मेरा काल ही सामने खड़ा है।

हंस बोले : इन धीवरों को कहने भी दो। प्रातःकाल जैसा योग्य समझा जाएगा किया जाएगा। अगर तुम्हें मरना ही नही होगा तो धीवर क्या, बलवान-से-बलवान भी तुम्हारा बाल बाँका नही कर सकता।

कछुआ : मित्रो, ऐसा न कहो। इन बातो का जो परिणाम मैंने देखा है वह मै सुनाता हूँ।

३

भविष्य का विचार करो

यद्भविष्यो विनश्यति

° ° ° °

जो होगा सो होगा ही यह विश्वास
रखनेवाला नष्ट हो जाता है।

° ° ° °

आज से कुछ वर्ष पूर्व इसी सरोवर में अनागत विधाता (आपत्ति आने से पूर्व ही निराकरण करने वाली) प्रत्युत्पन्न-मति (समय देखकर कार्य करने वाली) और यद्भविष्य (होनहार को अटल मानने वाली) मछलियाँ रहती थी।

एक दिन आज की ही भाति कई धीवर यहाँ आए और खड़े होकर विचार करने लगे कि कल आकर यहाँ मछलियाँ पकड़ेगे।

धीवरो की वाते सुनकर अनागतविधाता तो किसी प्रकार दूसरे तालाब मे चली गई और अपने प्राण बचाए।

प्रत्युत्पन्नमति ने विचार किया कि यह कोई निश्चित तो है ही नही कि धीवर कल अवश्य आएँगे। अतः सरोवर नही छोड़ना चाहिए। समय पर जैसा उचित हो करना आवश्यक है।

तीसरी यद्भविष्य विचार करने लगी—इस तरह की

दौड़-धूप मे क्या रखा है ? यदि कल मुझे मरना ही होगा तो कोई वचा नहीं सकता। यदि जीवित रहना है तो कोई क्या खाकर मारेगा ? भाग्य से मै क्या, कोई भी नही लड़ सकता।

तीनों के विचार भिन्न थे अत. उनके रक्षा के उपाय भी भिन्न थे।

अगले दिन प्रात.काल धीवर उसी सरोवर पर जाल लेकर आये। अनागत विधाता तो पहले ही आ चुकी थी। प्रत्युत्पन्नमति जव पकड़ी गई तो उसने अपने को मृत दिखाया। धीवर ने उसे जाल से खोलकर एक ओर रख दिया। वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति से उछली और पानी में पहुँच गई। अव वह गहरे पानी मे पहुँच चुकी थी। यद्‌भविष्य ने वचने का कोई भी विचार नही किया। अत. वह मारी गई।

× × × ×

कछुआ : अतएव मैं कहता हूँ कि हमे शीघ्र ही इस सरोवर को छोड़ देना चाहिए।

हंस वोले : आप जल की भांति पृथ्वी पर तो चल नहीं सकते फिर यह किस भांति सम्भव है।

कछुआ : कोई ऐसा उपाय सोचिए. जिससे कि मै आकाश मार्ग से ही आप के साथ जा सकूं।

हंस : वह कौन-सा उपाय है ?

कछुआ : आप लोग एक लकड़ी अपने मुंह मे ले ले, मैं उसे वीच से अपने मुंह से पकड़ लूंगा। इस भांति हम तीनों ही आकाश-मार्ग के द्वारा दूसरे तालाव मे पहुँच जायेंगे।

हंस : भाई, उपाय के साथ-साथ उसकी हानियों पर भी विचार कर लेना चाहिए। नही तो कहीं हमें भी वगुले की भांति

न पछताना पड़े ।

कछुआ : वह कैसे ?

हंस : सुनिए !

४

उपाय के साथ अपाय भी सोचो

उपायं चिन्तयन्प्राज्ञो ह्यपायमपि चिन्तयेत् ।

• • • •

बुद्धिमान् को चाहिए कि उपाय के साथ ही उससे सम्वंधित दुष्परिणामो का भी विचार करले ।

• • • •

उत्तर दिशा मे गृध्रकूट नाम का एक वड़ा भारी पीपल का वृक्ष है। उस पर किसी समय वहुत से वकुले रहते थे। वृक्ष के नीचे एक सांप भी रहता था जो सदा उनके वच्चो को खा जाता था। वच्चों की मृत्यु पर वह वकुले विलाप करते थे। उनके विलाप को सुनकर एक वकुले ने उन्हे सलाह दी कि तुम मछलियाँ पकड़कर नेवले के विल से लेकर सर्प के विल तक उनकी पंक्ति वना दो। इस भांति नेवला उन्हे खाता हुआ सर्प के विल तक आयेगा और सर्प को भी मार डालेगा।

वकुले ने ऐसा ही किया। नेवला मछलियों को खाता हुआ आया और उसने सर्प को भी मार डाला।

परन्तु अगले दिन नेवले ने जव पीपल पर वकशावको का कोलाहल सुना तो उन्हें भी मारकर खा लिया।

५

नीच न छोड़े नीचता

नीच. श्लाघ्यपदं प्राप्य स्वामिनं हन्तुमिच्छति।

० ० ० ०

नीच व्यक्ति ऊँचा पद पाकर उपकारी स्वामी को ही मारना चाहता है।

० ० ० ०

गौतम ऋषि के आश्रम में एक महातप नाम के ऋषि तप करते थे। एक दिन उन्होंने देखा कि कौआ अपनी चोंच में किसी चूहे को ले जा रहा है। अचानक चूहा उसकी चोंच से छूट गया। महातप मुनि को उस पर दया आई। मुनि ने उसे उठा लिया। अन्न के दाने खिला कर उन्होंने उसे पाला-पोसा।

एक दिन किसी बिल्ले की उस पर निगाह पड़ गई। जब वह उसे पकड़ने दौड़ा तो चूहा भाग कर मुनि की गोद में आ-गया। मुनि को उस पर दया आई तो उन्होंने उसे चूहे से बिलाव बना दिया।

जंगली कुत्ते इस बिलाव को खाने दौड़ते थे। अतः मुनि ने उसे भी कुत्ता बना दिया। अब वह कुत्ता व्याघ्र से डरता था। अतः मुनि ने उसे कुत्ते से व्याघ्र भी बना दिया।

प्रायः पड़ोसी मुनि इस व्याघ्र और महातप मुनि को देख

कर कहा करते :

इस मुनि ने इसे चूहे से व्याघ्र बना दिया।

व्याघ्र सोचने लगा—यह तो बड़ा भारी कलंक है। जब तक यह मुनि जीवत है, मेरा यह कलंक धुल नही सकता। अतः इस मुनि को मार डालना चाहिये।

एक दिन अवसर पाकर जब व्याघ्र मुनि को मारने चला तो मुनि ने मुसकराकर कहा :

तू चूहा हो जा। मुनि का कहना था कि वह व्याघ्र फिर से चूहा हो गया।

× × × ×

मन्त्री ने आगे कहा—महाराज, केवल इतना ही नहीं। कौआ नीच जाति का है। नीच अपने दुष्कर्म तो करता ही है पर उनसे उसे हानि भी होती है। जैसे बगुला केकड़े के लोभ मे मारा गया।

राजा बोला : वह कैसे?

६

मुख में राम बगल में छुरी

विषकुम्भं पयोमुखं

ऐसे मित्र का विश्वास न करे जो मुँह का मीठा और दिल का बुरा हो।

मालव देश में पद्मगर्भ नाम का एक सरोवर था। एक दिन एक बूढा बगुला उसके तट पर चिन्तित-सा बैठा था। एक केकड़े ने आकर पूछा :

महाशय, आज आप अपना भोजन छोड़ कर यहाँ क्यों बैठे हैं।

वह बोला : भाई, इस सरोवर की मछलियाँ ही मेरे जीवन का आधार है। आज जब मैं शहर में घूम रहा था, तब मैंने सुना कि कुछ धीवर आपस में बातें कर रहे थे और कह रहे थे कि हम कल पद्मगर्भ सरोवर पर जाकर मछलियाँ पकड़ेंगे। अब मै सोच रहा हूँ कि यदि वे धीवर इन मछलियों को ले जायेंगे तो मै क्या खाऊँगा।

बगुले की बात सुनकर मछलियाँ सोचने लगी : इस आपत्ति

के समय में तो यह भी हमारा मित्र है । अतः मछलियो ने बगुले से कहा :

इस आपत्ति से वचने का क्या कोई उपाय भी है ?

वगुला : इस समय तो केवल यही उपाय है कि इस तालाव को छोड़ कर किसी दूसरे तालाव में चला जाए। यदि आप लोग चाहे तो मैं आप लोगों को पासवाले सरोवर में एक-एक करके ले जा सकता हूँ ।

फिर क्या था ? प्रत्येक मछली सबसे पहले जाने के लिये तैयार हो गई । वगुला वारी-वारी सबको ले जाता और पास की झाड़ी में छिपकर उन्हें खा जाता । इसी भाँति उसने वहुत-सी मछलियों को खा लिया ।

कुछ समय उपरान्त केकड़े ने वगुले से कहा : भाई, सव को ले जाओगे । पर क्या हमे यहीं छोड जाओगे ?

बगुले का पेट तो खूव भर चुका था । पर फिर भी उसने सोचा—मैंने जीवन भर मे कभी भी केकड़े का माँस नहीं खाया—आज सौभाग्य से यह मुझे प्राप्त हुआ है । यह विचार कर उसने केकड़े से कहा :

अरे भाई यह क्या कहते हो ? तुम्हे नही ले जाऊँगा तो और किसे ले जाऊँगा ?

वगुले ने केकड़े को अपनी पीठ पर बिठा लिया और उस आर चल दिया जहाँ उसने मछलियों को खाकर उनकी हड्डियों का ढेर लगाया हुआ था । हड्डियों के ढेर को देखकर केकड़े ने सारी स्थिति समझ ली । वह सोचने लगा—तव तक भय से डरना नहीं चाहिये जव तक वह आ न जाये । भय के उपस्थित हो जाने पर उसके निवारण के लिए यथोचित रूप से जैसा वन

पड़े करना चाहिये।

केकड़े ने पीठ पर से ही बगुले की गर्दन पर अपने दाँत जमा दिए। उसने उसे ऐसा काटा कि वह वहीं मर गया।

× × × ×

दूत हिरण्यगर्भ से बोला : महाराज, इतनी कथा सुनकर मन्त्री गृद्ध आगे बोला : हे राजन्! इसीलिए मैं कहता हूँ कि नीच बड़ा बनने पर भी अपनी आदत नहीं छोड़ता। वह लोभ करता है और नष्ट ही हो जाता है।

चित्रवर्ण : मन्त्रिन्, मैंने विचार किया था कि मेघवर्ण को कर्पूरद्वीप का राजा बना दूंगा तो वह वहाँ के सुन्दर-सुन्दर पदार्थ हमारे लिए भेजा करेगा।

मन्त्री हँसा और फिर बोला : महाराज, जो भविष्य का विचार करके मन-ही-मन के लड्डू खाता है वह बर्तन फोड़ने वाले ब्राह्मण की भाँति दुःखी होता है।

राजा ने उत्सुकतापूर्वक पूछा : यह कथा कैसे है?

मन्त्री बोला : सुनो महाराज!

७

शेखचिल्ली

अनागतवतीं चिंतां कृत्वा यस्तु प्रहृष्यति
स तिरस्कार माप्नोति · ··

० ० ० ०

भविष्य के कल्पित-मनोरथो से ही जो व्यक्ति फूला
नही समाता उसे प्रायः नीचा देखना पड़ता है।

० ० ० ०

देवीकोट नाम के नगर में देवशर्मा नाम का एक ब्राह्मण रहता था। यजमानों के दान से उसकी आजीविका चलती थी। संक्रांति के दिन उसे किसी यजमान ने एक सत्तुओं से भरा सकोरा दिया। उसे लेकर देवशर्मा अपने घर वापस चल दिया।

ज्येष्ठ, आषाढ़ की गर्मी थी। नीचे से मार्ग की गरम-गरम मिट्टी उसके पैर जला रही थी और ऊपर से जलता हुआ सूर्य उसके सिरपर आग बरसा रहा था। इस धूप से बचने के लिये उसने आस-पास छाया के लिये अपने नेत्र दौड़ाए। उसे एक ओर एक कुम्हार का घर दिखाई दिया। उसे तो मानो डूबते को घास का सहारा मिल गया। कुम्हार के घर के पास ही मिट्टी के बर्तनों का बड़ा भारी ढेर लगा हुआ था। उसने अपना सत्तू का सकोरा वहाँ रखा और हाथ मे

डण्डा लेकर उसकी रखवाली करने लगा। वह बार-बार डण्डा हिला रहा था और सोच रहा था—

जब मै इन सत्तुओं वाले सकोरे को वेचूंगा तो मुझे दस कौड़ियाँ प्राप्त होगी। फिर मै इसी कुम्हार से कौड़ियों के घड़े और सकोरे खरीद लूगा। उनको वेचूंगा और इस तरह कई बार बेचने पर जब मेरे पास बहुत पैसे हो जायेगे तो मैं कपड़े की दुकान खोल लूंगा। इसी प्रकार एक दिन मै देखते-ही-देखते लखपति हो जाऊँगा। लखपति होकर मै चार शादियाँ करूँगा। उसमें से जो सबसे अधिक सुन्दर होगी, मैं उसे हृदय से प्रेम करूँगा। वे तीनों उस सुन्दर पत्नी से डाह करेंगी, आपस में लड़ेगी और झगड़ेंगी। उस समय जब वह मेरे वार-वार मना करने पर भी नहीं मानेगी तब मै डण्डे से ऐसे पीटूंगा। इनना सोचकर ज्योंही उसने डण्डा चलाया, उसके सकोरे के साथ-साथ कुम्हार के बर्त्तन भी फूट गये।

डण्डे और बर्त्तनों की आवाज सुनकर कुम्हार वहाँ आया और पण्डितजी को फटकारते हुए वोला :

कृपया आप हमारे घर फिर कभी न आइएगा।

× × × ×

गृद्ध बोला : इसीलिए मैं कहता हूँ कि कभी भी भविष्य का विचार करके प्रसन्न नहीं होना चाहिये !

चित्रवर्ण : तो मन्त्री तुम्हीं मुझे सलाह दो कि मै क्या करूँ ?

मन्त्री : राजन् मेरी सलाह तो यह है कि अव आप हिरण्यगर्भ से संधि कर ले। कारण यह है कि अव वर्षाऋतु प्रारम्भ होने वाली है। ऐसे समय में युद्ध होने पर हमें अपने देश जाना भी कठिन हो जायेगा। हमने विजय प्राप्त की।

हमे यश भी मिला । अब यहाँ और अधिक समय ठहरना आपत्ति-जनक है । राजन्, हो सकता है कि आपको मेरा कहना कटु लगता हो । उसके लिए मै क्षमा चाहता हूँ ।

राजा : मन्त्रिन्, यह तो तुम्हारा कर्त्तव्य ही है । वह मन्त्रीपद के योग्य नहीं जो कटु अथवा मीठे के लोभ तथा भय में पड़कर राजा को अच्छी सम्मति न दे ।

मन्त्री महाराज, तो अवश्य ही आप संधि करले । समान बल वालों में यदि सधि हो जाये तो वहुत कल्याण-कारी होती है । अन्यथा कभी-कभो दोनों हो मृत्यु को प्राप्त होते हैं, जैसे—

८

सलाह से काम करो

सन्धिमिच्छेत् समेनापि

° ° ° °

तुल्य वलवाले से सन्धि कर लेना
ही श्रेयस्कर है।

° ° ° °

प्राचीन काल में सुन्द और अपसुन्द नाम के दो महान् वलशाली दैत्य हुए है। इन्हे त्रिलोकी पर एकछत्र राज्य करने की महान् अभिलाषा थी। अतः इन्होने शंकर भगवान् की तपस्या प्रारम्भ कर दी। भगवान् आशुतोष शकर इन दोनों की तपस्या से वहुत प्रसन्न हुए। उन्होने दोनों को दर्शन दिए और कहा :

दैत्यो, मै तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूँ। तुम जो वरदान चाहो माँग लो।

सरस्वती की कृपा से वे दैत्य जो कुछ वरदान माँगना चाहते थे न माँग पाए। अपितु उन्होंने कहा :

भगवान्, यदि आप प्रसन्न है तो हमे अपनी पार्वती वरदान में दे दीजिए।

शंकर भगवान् के क्रोध की सीमा न रही। परन्तु वचन-

वद्ध होने के कारण उन्होने उन दोनों को पार्वती सौंप दी।

पार्वती के अनुपम दैवी सौन्दर्य को देखकर दोनों उनके रूप पर लट्टू हो गए। दोनो ने 'यह मेरी है' 'यह मेरी है' कहकर शोर मचाना प्रारम्भ कर दिया।

दोनों को इस भाँति लड़ते देखकर शंकर भगवान् ने एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण किया और उनकी ओर चल दिए। वृद्ध को अपनी ओर आते देखकर दोनों उसे मध्यस्थ बनाने के लिए बोले :

ब्राह्मण देवता, कृपया हमारी बात सुने !

ब्राह्मण : कहो भाई, तुम तो ऐसे प्रतीत होते हो जैसे लड़ने को उतारू हो।

पहला दैत्य : महाराज, मैने इस सुन्दरी को तप करके प्राप्त किया है। अतः यह मेरी है।

दूसरा दैत्य : जी नही, मैने इससे अधिक तप किया है अतः यह मेरी है।

ब्राह्मण : भाई, तुम दोनो ने साथ-साथ तप किया है। अब यह निर्णय कठिन है कि किसने अधिक तप किया है। अत. अब आप लोग परस्पर युद्ध करे। इस तरह जो अधिक बलवान् हो उसे पार्वती मिल जाये।

फिर क्या था ? दोनो ने अपनी-अपनी गदा सम्भाल ली और लडने लगे। भगवान् शंकर इन दोनो की पापमय प्रवृत्ति को देखकर मुस्करा रहे थे। इतने मे ही दोनों एक-दूसरे के असह्य वार से घायल होकर सदा के लिए सो गए।

भगवान् शकर अपनी पार्वती को लेकर पुन. हिमालय की ओर बढ चले।

मन्त्री : अतएव मैं कहता हूँ कि श्रीमान् उनसे मैत्री कर ले।

हिरण्यगर्भ का दूत आगे बोला : महाराज, इसी भाँति चित्रवर्ण के मन्त्री गृद्ध ने बार-बार चित्रवर्ण को समझाया।

दूत के मुँह से शत्रुपक्ष का समाचार सुनकर हिरण्यगर्भ अपने मन्त्री से बोला :

मन्त्रिन्, तुम्हारी क्या सलाह है। हमें चित्रवर्ण से सन्धि करनी चाहिए अथवा नही ?

मन्त्री : महाराज ! चित्रवर्ण इस समय विजयगर्व में फूला हुआ है। अतः वह सीधी तरह से सन्धि के लिए प्रस्तुत न होगा।

हिरण्यगर्भ : तो क्या किया जाये ?

मन्त्री : महाराज, सिंहलद्वीप का महाबल नाम का सारस आपका परम मित्र है। आप उसे सूचना दे कि वह चित्रवर्ण पर चढ़ाई कर दे। इस भाँति बराबर का शत्रु पाकर चित्रवर्ण स्वयं आपसे सन्धि करने आयेगा।

यह सुनकर राजा हिरण्यगर्भ ने दूत बगुले को महाबल सारस के पास पत्र देकर भेज दिया और चित्रवर्ण के लिए दूसरे गुप्तचर नियुक्त कर दिये।

× × × ×

मन्त्री के मुँह से सन्धि की बात सुनकर चित्रवर्ण ने मेघवर्ण को बुलाकर पूछा :

मेघवर्ण ! हिरण्यगर्भ कैसे राजा हैं ? उसका मन्त्री कैसा है ?

मेघवर्ण : महाराज, हिरण्यगर्भ तो दूसरा ही युधिष्ठिर

है। उसके मन्त्री जैसा तो मैंने अपने जीवन में देखा ही नहीं।

चित्रवर्ण : यदि ऐसा है तो तूने उसे ठग किस प्रकार लिया ?

मेघवर्ण : महाराज, विश्वास दिलाकर तो प्रत्येक को सहज मे ही ठगा जा सकता है। अपनी गोद में सुलाकर यदि किसी को मार दिया जाए तो उसमें क्या बहादुरी ! हाँ, उस चतुर मन्त्री ने तो मुझे पहले ही पहचान लिया था। किन्तु हिरण्यगर्भ बड़ा ही सज्जन है। वह ठगा गया। नीति कहती है कि अपने जैसा सज्जन प्रत्येक को नहीं समझना चाहिए। ऐसा करने पर जो होता है वह मैं सुनाता हूँ।

९

धूर्तों का चक्कर

आत्मौपम्येनयो वेत्ति दुर्जनं सत्य वादिनं,
स सदा वञ्च्यते धूर्तैः...............।

॰ ॰ ॰ ॰

जो दुर्जनो को भी अपने ही समान
सत्यवादी समझता है, वह धूर्तों के
हथकण्डों का शिकार बन जाता है।

॰ ॰ ॰ ॰

महर्षि गौतम के वन में एक ब्राह्मण रहता था। उसने एक बार यज्ञ करने का विचार किया। अतः वह यज्ञ की सामग्री लेने नगर गया। वहाँ उसने यज्ञ की अन्यान्य सामग्री के साथ-साथ बलि देने के लिए एक बकरा भी लिया। बकरे को कन्धे पर लादकर वह आश्रम की ओर चल दिया।

मार्ग में उसे तीन धूर्तों ने देखा। बकरे को देखकर उनके मुँह में पानी भर आया। उन्होने निश्चय कर लिया कि जिस भाँति भी हो, हम इस ब्राह्मण से यह बकरा अवश्य ले लेंगे। यह निश्चय करके तीनों एक-एक कोस के अन्तर पर खड़े हो गये। ज्यों ही वह ब्राह्मण एक धूर्त के पास से बकरे को कन्धे पर लादे निकला, धूर्त बोला :

ब्राह्मण देवता, कहाँ से आ रहे हो ?

ब्राह्मण : नगर से आ रहा हूँ।

धूर्त : इस कुत्ते को कन्धे पर लादकर कहाँ ले जा रहे हो ?

ब्राह्मण : कुत्ता ! नहीं भाई, यह कुत्ता नही, बकरा है।

इतना कह ब्राह्मण आगे बढ़ चला।

धूर्त : हमारा क्या ! कुत्ते को ही लादकर ले जाओ।

ब्राह्मण : अभी लगभग दो मील ही चला होगा कि एक दूसरा धूर्त मिला।

धूर्त : पण्डितजी ! कहाँ जा रहे हो ?

ब्राह्मण : अपने आश्रम जा रहा हूँ।

धूर्त ने आश्चर्य से पूछा : अरे ! तुमने इस कुत्ते को अपने कन्धे पर क्यों लाद रखा है ?

ब्राह्मण : कुत्ता ! इतना कहकर उसने उसे पृथ्वी पर खड़ा किया और ध्यान से देखकर फिर आगे चलता बना।

ब्राह्मण सोचता जा रहा था : क्या यह बकरा नही ? कुत्ता भी क्या ऐसा ही होता है ? पर कुत्ते की तो पूंछ काफी लम्बी होती है ? हो सकता है यह किसी नई जाति का कुत्ता हो ? ब्राह्मण ने फिर ध्यान से देखा—पर यह सोचकर कि कुछ भी हो यह कुत्ता नही हो सकता । ये लोग न जाने क्यों कुत्ता कहते है, आगे चल दिया।

कौआ कुछ ठहरकर बोला : ठीक भी है, दुष्टों की बातों में आकर सज्जन की बुद्धि फिर जाती है।

राजा बोला : कैसे ?

कौआ बोला··

१०

संगति का असर

मतिर्दोलायते सत्यं सतामपि खलोक्तिभिः

° ° ° •

सज्जन पुरुषो की भी वुद्धि दुष्टो की छल-
भरी वातो में आकर चचल हो जाती है ।

• ° ° •

किसी वन में मदोत्कट नाम का सिह रहता था । उसके तीन सेवक थे । जिनमे एक कौवा, एक व्याघ्र और एक गीदड़ था । ये सारे वन में घूम-फिरकर अपने राजा को वन का समाचार सुनाया करते थे । यदि कोई नया प्राणी वन में आता तो सवसे पहले ये ही उससे मिलते ।

एक दिन तीनों वन में घूम रहे थे कि उन्हे एक ऊँट मिला । कौए ने उच्च स्वर में ऊँट से कहा :

ऐ ऊँट, तू किस की आज्ञा से इस वन मे फिर रहा है ?

ऊँट ने अपना सारा व्रत्तान्त उन्हें कह सुनाया । ऊँट की दर्दभरी कहानी सुनकर तीनों को उस पर दया आई और वे उसे सिंह के पास ले गए । तीनों की प्रार्थना पर सिंह ने ऊँट को अभय दिया । उस दिन से ऊँट भी सिंह के सेवकों मे से एक हो गया ।

एक समय वर्षा अधिक होने के कारण तीनों सेवकों को कुछ खाने को नही मिला। सिंह की भी एक बलवान हाथी से मुठभेड़ हो गई थी। सिंह ने उसे मार तो दिया पर हाथी ने भी उसे कम चोटे न दी थी। अतः वह भी आस-पास जाकर आहार खोजने मे असमर्थ था। सबने बहुत प्रयत्न किया, पर किसी प्रकार सफलता नही मिली। बहुत संतप्त होकर कौए ने व्याघ्र से कहा :

मित्र, इस कांटे खाने वाले ऊँट से हमें क्या लाभ ? इसे मारकर क्यों न खा लिया जाए ?

व्याघ्र : मूर्ख, जानते नही हो, महाराज ने इसे अभय प्रदान किया हुआ है।

गीदड़ : इन बातों मे क्या रखा है ? भूख से व्याकुल होकर प्राणी क्या नही कर लेता ? भूखी होने पर स्त्री अपने पुत्र का त्याग कर देती है। भूखी होने पर सर्पिणी अपने पुत्रों को खा जाती है। फिर भूखा, भयभीत, पागल, थका हुआ, क्रोधी और लोभी प्राणी तो हर एक पाप करने पर तुल जाता है।

आपस मे सलाह करके तीनों मदोत्कट सिंह के पास गए।

सिंह ने पूछा : क्यों ! आज कहीं कुछ प्राप्त हुआ ?

कौआ : महाराज, बहुत खोजा पर कुछ भी नहीं मिला।

चिन्तित होकर सिंह बोला :

अब हम लोग किस भाँति जीवित रह सकेंगे ?

कौआ : परोसी हुई थाली को छोड़कर बैठे रहने के कारण आज हमारी यह हालत हुई।

सिंह : तुम्हारा क्या तात्पर्य है ? क्या कोई भोजन हमारे

पास है ?

कौए ने सिह के कान में कहा : चित्रकर्ण ।

सिंह : यह कभी नही हो सकता । हमने चित्रकर्ण को अभयदान दिया हुआ है । अभयदान से बढ़कर तो गौदान अथवा अन्नदान भी श्रेयस्कर नहीं । मैं उसे कभी भी नही मार सकता ।

कौआ : श्रीमान् जी ! आप चिन्ता क्यों करते है ? आप उसकी हत्या न करें । वह स्वयं आपके लिए अपना शरीर समर्पित करेगा ।

सिंह शान्त हो गया । कौआ अगले दिन समय पाकर सब साथियों को लेकर सिह के सम्मुख उपस्थित हुआ ।

कौआ : महाराज, कहीं कुछ भी खोजे नहीं मिलता । आप इस भाँति कब तक भूखे रहेंगे । अब तो आप मुझे ही खालें । अन्यथा आपकी दया से पला हुआ यह शरीर फिर कब काम आयेगा ?

सिंह : भाई, मै स्वयं मर सकता हूँ, पर कभी ऐसा नहीं कर सकता ।

कौए के बाद गीदड़ और गीदड़ के बाद व्याघ्र ने ऐसा ही कहा । अपनत्व दिखाने की इच्छा से चित्रकर्ण (ऊंट) ने भी उसी भाँति कहा । उसके कहते ही व्याघ्र ने उसे मार डाला और सबने मिलकर खा लिया ।

× × × ×

बस ठीक, इसी भाँति धूर्तों की बात सुनकर ब्राह्मण के मस्तिष्क में भी भ्रम उत्पन्न हो गया ।

वह अभी थोड़ी दूर ही और चल पाया था कि उसे

तीसरा ठग भी मिल गया। उसने भी हँसते हुए कहा :

पण्डितजी इस कुत्ते को कहाँ ले जा रहे हो ?

तीसरे धूर्त की वात सुनकर ब्राह्मण को विश्वास होगया कि हो-न-हो यह कुत्ता ही है। दुकानदार ने मुझे ठग लिया। अव तो मैं अपवित्र हो गया। ब्राह्मण ने बकरे को वही मार्ग पर छोड़ दिया और स्वयं स्नान करने चल दिया।

× × × ×

मेघवर्ण बोला : इसीलिए मैं कहता हूँ कि अपने समान ही दूसरों को भी सज्जन समझने वाला व्यक्ति धूर्तों से ठगा जाता है।

राजा : परन्तु मेघवर्ण, तू इतने दिनों तक शत्रुओं के किले में रहा किस तरह ? तुझे उन्होंने कुछ भी कष्ट नहीं दिया।

मेघवर्ण : महाराज, जिससे कार्य निकलना होता है उसके लिए सब कुछ सहा जाता है। लोग जलाने वाले ईंधन को सिर पर ढोया करते हैं। चतुर व्यक्ति तो अपनी कार्य-सिद्धि के लिये शत्रुओं को भी कन्धों पर ढोता है। जैसे बूढ़े सर्प ने मेंढ़कों को कन्धों पर ढोया

११

जैसा समय वैसा काम

स्कन्धेनापि वहेच्छत्रून् कार्यामासाद्य बुद्धिमान्।

° ° ° °

बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि काम पड़ने पर
शत्रु का भी आदर कर ले।

° ° ° °

किसी पुरानी फुलवारी में मन्दविष नाम का सर्प रहता था। वह बहुत वृद्ध था, अतः निर्बल होने के कारण वह अपना भोजन तक एकत्रित नहीं कर पाता था। एक दिन मन्दविष नदी के किनारे सुस्त सा-पड़ा था। उसे एक मेंढक ने देख लिया। कुछ समय विचार करने के उपरान्त उसने दूर से ही पूछा :

सर्प ! आज तू अपना भोजन क्यों नहीं खोज रहा ?

सर्प : भाई, तुम अपना काम करो। मुझ मन्द-भाग्य के विषय में पूछकर क्या लोगे ?

अब मेंढक की उत्सुकता और बढ़ी और आग्रह करते हुए कहा :

नहीं भाई, तुम्हें यह सब बताना ही पड़ेगा।

सर्प : अगर तुम नहीं मानते तो सुनो—

ब्रह्मपुर नाम के नगर में कौन्डिन्य नाम का एक तपस्वी ब्राह्मण रहता है। वह महान् ब्रह्मनिष्ठ और वेदपाठी है। एक दिन उसका बीस वर्षीय नवयुवक पुत्र मेरे पास से निकला। दुर्भाग्यवश मैने अपने कठोर स्वभाव के कारण उसके सुशील नामक पुत्र को डस लिया।

पुत्र के निधन का समाचार सुनकर कौन्डिन्य अपने आश्रम की ओर भागा हुआ आया। अपने पुत्र के मृत शरीर को देखकर वह शोक से मूर्छित हो गया। सुशील की मृत्यु का समाचार समस्त ब्रह्मपुर मे शीघ्र ही फैल गया। कौन्डिन्य के भाई-बन्धु वहाँ एकत्रित हो गए।

कहा भी है :

उत्सवे व्यसने युद्धे दुर्भिक्षे राष्ट्र विप्लवे।
राजद्वारे श्मशाने च य स्तिष्ठिति स बान्धवः॥

उत्सव के समय, दु:ख के समय, युद्ध के समय, अकाल पड़ने पर, राष्ट्र में उपद्रव होने के समय, कचहरी और श्मशान में जो साथ देता है, वही बन्धु है।

अपने बन्धु-बान्धवों को एकत्रित देखकर कौन्डिन्य और जोर-जोर से विलाप करने लगा। उसे इस भाँति विलाप करते देख कपिल नाम के एक गृहस्थी ने समझाते हुए कहा :

कौन्डिन्य, इस अनित्य संसार में सदा रहने वाला कौन है? बालक के उत्पन्न होते ही उसकी मृत्यु उसके साथ हो लेती है। इस संसार में अनेकों बड़े-बड़े राजा-महाराजा उत्पन्न हुए, जिनके पास कई अक्षौहिणी सेना थी। परन्तु आज उनका पता भी नही। जीवन के बढ़ते हुए क्षण उसे मृत्यु की ओर ही तो ले जाते है। यहाँ तक कि जीवन का प्रत्येक क्षण

जीवन की समाप्ति का द्योतक है।

कपिल ने इसी भाँति कौन्डिन्य को वार-वार समझाया। कपिल के उपदेशों से वह इतना प्रभावित हुआ कि वन जाने को प्रस्तुत हो गया। समय देखकर कपिल ने पुनः आग्रह किया :

कौन्डिन्य वन जाने से क्या लाभ? लोभ-मोह में ग्रसित पुरुषों के लिये तो वन जाना कोई लाभ नहीं देता। उन्हे वहाँ भी लोभ-मोह सताया करते है। जिसे इन लोभ-मोहादि से निवृत्ति है उसके लिए घर ही वन है।

कौन्डिन्य : आपका कहना सत्य है।

कुछ समय विचारकर फिर कौन्डिन्य वोला : हे पुत्र-घाती सर्प, मै तुझे शाप देता हूँ कि तुझ पर मेढक सवारी करेंगे।

कपिल के उपदेशों से वैराग्यवश होकर कौन्डिन्य ने संन्यास ले लिया। उस दिन से मैं यहीं पर मेंढकों को सवारी देने के लिए रहता हूँ।

यह सारा वृत्तान्त मेंढक ने अपने राजा को सुनाया। वह अपने साथियों को लेकर सर्प पर सवार हो गया। सर्प भी विचित्र चाल से सैर कराने लगा। अगले दिन सर्प धीमी चाल से चलने लगा। उसे इस भाँति धीरे-धीरे चलते देखकर मेंढकों का स्वामी वोला :

सर्प, आज तुम धीरे-धीरे क्यों चल रहे हो?

सर्प : महाराज खाने को कुछ मिलता ही नहीं।

ऐसा सुनकर मेंढकों का स्वामी वोला :

हमारी आज्ञा से तुम मेंढकों को खाया करो और हमें सैर कराया करो।

फिर क्या था ? सर्प ने धीरे-धीरे सब मेंढकों को खा लिया। यहाँ तक कि मेंढकों के स्वामी को भी खा गया।

× × × ×

यह कथा सुन कर कौवा शान्त हो गया। मन्त्री बोला : महाराज समय पड़ने पर तो शत्रु को भी, चाहे वह कितना भी बुरा क्यों न हो, कन्धो तक पर बैठा लेना चाहिए। फिर यह राजा तो बड़ा धर्मात्मा एवं सुशील है। अतः इससे संधि करने मे कोई भी हानि नही।

उसी समय जम्बुद्वीप से एक गुप्तचर ने आकर चित्रवर्ण से निवेदन किया : महाराज, सिंहलद्वीप के राजा सारस के सैनिकों ने जम्बुद्वीप को घेर लिया है।

गृद्ध मन-ही-मन बोला : सर्वज्ञ तू कितना नीतिज्ञ है ! तेरे लिए यह योग्य ही था।

राजा क्रोध में भरकर बोला :

मन्त्री, ॰ना को तैयार करो। मैं जम्बुद्वीप चलकर उस दुष्ट सारस को देखता हूँ।

मन्त्री : राजन्, मनुष्य को कभी भी बिना विचारे कोई काम नहीं करना चाहिए। इसी विषय मे मै आपको एक कथा सुनाता हूँ।

१२

बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछताए

सहसा विदधीत न क्रियाम

॰ ॰ ॰ ॰

कोई भी काम उतावलेपन में न करो,
तभी आपत्तियों से बचाव होगा।

॰ ॰ ॰ ॰

उज्जयिनी नगरी में माधव नाम का एक ब्राह्मण रहता था। एक दिन उनकी पत्नी, पति से बच्चे की रक्षा के लिए कहकर स्वयं स्नान करने चली गई। वह पुत्र के पास बैठा उसकी देख-रेख कर रहा था कि उसके लिए कहीं से भोजन का निमन्त्रण आ गया।

बेचारा माधव विचार में पड़ गया। यदि जाता हूँ तो बालक की रक्षा कौन करेगा। यदि नहीं जाता तो यजमान अवश्य ही किसी दूसरे ब्राह्मण को बुला लेगा। यजमान को आसन देकर वह घूम-फिर कर विचार करने लगा। बहुत विचार करने के उपरान्त उसे एक युक्ति सूझी। उसने पले हुए नेवले को बालक की रक्षा के लिए वहीं छोड़ दिया और स्वयं यजमान के साथ निमन्त्रण खाने के लिए चला गया।

ब्राह्मण के जाने पश्चात् एक सर्प बिल में से निकला

और शिशु की ओर फन उठाकर देखने लगा। सर्प को देखते ही वालक की रक्षा करने के विचार से नेवला सर्प पर झपटा और उसने उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए।

निमन्त्रण के उपरान्त ब्राह्मण अपने घर में घुसा। नेवले ने ब्राह्मण का द्वार पर ही स्वागत किया। सर्प का रक्त अब भी नेवले के मुँह पर लगा था। ब्राह्मण को वह दूर से ही दिखाई दे गया। उसने समझा कि नेवले ने पुत्र को खा लिया। फिर क्या था। उसने हाथ के डन्डे से नेवले के प्राण ले लिए।

परन्तु घर मे जाकर जब उसने बच्चे को खेलते हुए और सर्प के टुकड़े देखे तो महान् पश्चात्ताप हुआ।

× × × ×

मन्त्री बोला : इसलिए मैं कहता हूँ प्रत्येक कार्य विचार कर करना चाहिए।

राजा : मन्त्रिन्, यदि तुम्हारा यही विचार है तो सन्धि करले। पर क्या यह सम्भव है ?

मन्त्री : महाराज आप चिन्ता न करें। हिरण्यगर्भ और उसका मन्त्री दोनो ही योग्य एवं विद्वान् है। विद्वान् लोग पारस्परिक कलह से सदा दूर रहा करते है।

× × × ×

चित्रवर्ण और उसके मन्त्री की वाते हिरण्यगर्भ के दूत ने स्पष्ट रूप से अपने स्वामी को कह सुनाई। और कहा :

महाराज, चित्रवर्ण का मन्त्री आपसे सन्धि करने आ रहा है।

हिरण्यगर्भ को कुछ शंका हुई। क्योंकि शत्रु की नीति का कुछ भी पता चलाना बहुत कठिन होता है। शत्रु सन्धि के

बहाने ही नाश कर दिया करते हैं। परन्तु मन्त्री चक्रवाक ने हिरण्यगर्भ को समझाया।

हिरण्यगर्भ ने अपने मन्त्री समेत चित्रवर्ण के मन्त्री का स्वागत किया। दोनों पक्षों ने धर्म की प्रतिज्ञा करके परस्पर सन्धि कर ली।

× × × ×

विष्णुशर्मा बोला : राजपुत्रो, मैंने तुम्हें सन्धि-नीति भी सुना दी। अब आप लोग और क्या सुनना चाहते है ?

राजपुत्र : गुरुदेव, आपकी कृपा से हमें नीति का समुचित ज्ञान हो गया है। अब हमें आप कृपा करके अपना आशीर्वाद दीजिए।

विष्णु शर्मा : ऐसा है तो आओ, हम लोग कल्याण के लिए अपने आराध्य देव से प्रार्थना करें। तदनन्तर तुम अपने राज्य में जाकर अपनी प्रजा का पालन-पोषण करो।

॥ चतुर्थ खंड समाप्त ॥

इति